वर्ष–2, अंक–8
इंटरनेट संस्करण : 71

पत्रिका गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

ISSN 2249–5967
अक्टूबर 2012

रामानंद शर्मा ramanand210@gmail.com

अपनी बात

पिछले दिनों प्रख्यात लेखिका हान्ना रोसिन की किताब The end of Men : And the rise of women की समीक्षा The Economist में पढ़ रहा था. यह पुस्तक इसी महीने ग्रेट ब्रिटेन में प्रकाशित हो रही है. सहमति-असहमति से ऊपर उठते हुए पुस्तक में दी गई अनेकों स्थापनाएँ विचारोत्तेजक लगीं. कुछेक यों थी मसलन लेखिका घोषणा करती हैं कि आज पुरुष को इलहाम हो रहा है कि जेण्डर के फर्क पर मुसीबत आ रही है. उनके लिए फिक्र की बात है क्योंकि परिवारों की आय में स्त्रियों का योगदान पुरुषों की अपेक्षा पहले के मुकाबले बढ़ता ही जा रहा है. विश्व के हर देश के विश्वविद्यालयों में छात्राओं का अनुपात उल्लेखनीय रूप से बढ़ा हुआ है. दक्षिणी कोरिया की विदेशी सेवाओं के लिए आयोजित परीक्षाओं में स्त्रियों की सफलता ने विदेशी मंत्रालय को बाध्य किया है कि पुरुषों के लिए न्यूनतम कोटा लागू करे. ब्राजील में करीब एक तिहाई महिलाओं की आय पुरुषों के मुकाबले अधिक है. इसका नतीजा यह हुआ है कि पुरुषों ने अपने को Men of Tears कहते हुए चर्च सहायता समूहों का गठन किया है.

ऐटलांटिक पत्रिका की सम्पादिका मिस रोशिन मानती हैं कि पुरुष निकट भविष्य में लुप्त नहीं होंगे. उनका कहना है स्त्रियाँ उत्कृष्ट होती जा रही हैं, जबकि पुरुष पिछड़ रहे हैं. अनुसंधान के क्रम में अमेरिका के विभिन्न राज्यों का दौरा करने के क्रम में आलाबामा में उन्होंने पाया कि औरतों की औसत आय पुरुषों से ४० प्रतिशत अधिक है. यहाँ पुरुषों को रोजगार पाने के तरीके सीखने के लिए वर्चुवल सिमुलेशंस देखने को प्रोत्साहित किया जाता है.

मिस रोशिन की युक्तियाँ पुरुषों के अन्त की घोषणा तो नहीं करती, पर उनकी स्थिति में लगातार गिरावट की तस्वीर पेश करती है. सेवा आधारित नई अर्थ-व्यवस्था संप्रेषण एवं अनुकूलन को पुरस्कृत करती है. महिलाएँ पुरुषों के मुकाबले इन लक्षणों में अधिक दक्ष होती हैं. मिस रोशिन स्थापित करना चाहती हैं कि संसार ने मातृसत्ता को स्वीकृति दे दी है, लेकिन समर्थन में आँकड़े नहीं जुटा पातीं.

पिछले पचास सालों में ऐसा क्या हुआ कि ५०,००० सालों से कायम पुरुष सत्ता पर विलुप्ति की सम्भावना की बात उठ रही है. इस संक्रमण को विकासवाद के आइने में द्वन्द्वात्मक पद्धति से समझा जा सकता है. मानव सभ्यता के इतिहास को तीन मुख्य चरणों में बाँटा जा सकता है. कृषि पर आधारित समाज व्यवस्था से उद्योग और अंत में प्रौद्योगिकी पर आधारित सभ्यता और समाज. यह यात्रा कृषि के आविष्कार के साथ शुरू हुई. घर बने. कृषि के आविर्भाव के साथ पुरुष और नारी के बीच श्रम-विभाजन स्थापित हुआ. कृषि ने समाज में वर्गभेद को जन्म देने के अलावे पहले से मौजूद लैंगिक असमानताओं को और भी धारदार बनाया. रोजगार का जिम्मा पुरुष का और घर सँभालना औरत के जिम्मे. अक्सर बोझ ढोने का जिम्मा औरतों पर पड़ने लग गया. इसके अलावे गर्भधारण की बारम्बारता बढ़ने के फलस्वरूप वे खराब सेहत से ग्रस्त रहने को अभिशप्त हुईं. सामान्य रूप से इसने मनुष्य समाज में औरतों की आपेक्षिक स्थिति को बुरा बनाया और वर्ग आधारित समाज को लागू किया. दोनों के बीच सहजीविता (symbiotic) का सम्पर्क स्थापित हुआ, पारस्परिक निर्भरता का.

औद्योगिक समाज में पुरुष और नारी के बीच का समीकरण बदला. औरत और मर्द के बीच समानता की अवधारणा उभरी. लिंग आधारित श्रम-विभाजन की अवधारणा पर सवाल उठने लगे. और नारी पुरुष का सम्पर्क पूरक होने के बजाय योगात्मक होने लग गया. स्त्रियों का कर्मक्षेत्र घर की चाहरदीवारी से बाहर भी प्रतिष्ठित हुआ और पारस्परिक निर्भरशीलता की बाध्यता में कमी आई.

औद्योगिक समाज के प्रौद्योगिकी आधारित समाज में संक्रमण से आधुनिक समाज का उदय हुआ. महिलाओं के समक्ष नए आयाम उद्घाटित करना आधुनिकता की सबसे अधिक उल्लेखनीय उपलब्धि है. युगान्तरकारी परिवर्तनों का सिलसिला शुरू करने का श्रेय दो आविष्कारों को जाता है - रसोई गैस और जन्म निरोधक उपकरण. जन्म निरोधक उपकरणों ने अनियमित एवं अनियन्त्रित प्रसव के चक्र से औरतों को मुक्त किया. उनको अपनी दशा एवं दिशा पर ध्यान दे पाने के लिए समय, सुविधा एवं अवसर की उपलब्धता बढ़ी. रसोई गैस ने घर की व्यवस्था को सुगम एवं सहज बनाया. नारी सम्भावनाओं को ग्रहण करने के सामर्थ्य से सज्जित हुई. इन दो आविष्कारों के ही कारण ५० हजार सालों से स्थापित पुरुष तंत्र को वास्तविक चुनौती मिल पाई है.

'प्रथम प्रतिश्रुति' श्रीमती आशापूर्णा देवी की एक किताब का नाम है. इसकी नायिका सत्यवती औरतों के लिए परिवार और समाज में सम्मान एवं सुख की प्रतिश्रुति का अभियान छेड़ती है. इस अभियान की उत्तरकथा का विवरण सत्यवती की बेटी सुवर्णलता और नतनी बकुल लता के माध्यम से तीन भागों में पेश किया गया है. यह बीसवीं सदी में भारतीय नारी की तीन पीढ़ियों की यात्रा का दस्तावेज है. सत्यवती और उसकी बेटी सुवर्णलता के जीवन में अपने लिए कोई सपना नहीं है, पूरी तरह सन्तान के निर्माण के प्रति समर्पित हैं. सत्यवती पितृसत्ता के प्रतिरोध के सामने टिक नहीं पाती पर आत्मसमर्पण भी नहीं करती. सुवर्णलता अन्त तक संघर्ष करती है और यथास्थिति में दरार डालने में सफलता पाती है जबकि बकुल के सामने नया सामाजिक परिदृश्य है जिसमें स्वर्णलता की नतनियाँ पढ़ने-लिखने के अवसर एवं सुविधाएँ समान रूप से पा रही हैं. पुरुषों की तरह सारे विकल्प उन्हें उपलब्ध हैं. वे स्वयं अपने जीवन के फैसले ले रही हैं. अपने भाग्य के लिए जिम्मेदार हो रही हैं. फिर भी अन्त में सवाल रह ही जाता है, क्या सत्यवती की नतनियाँ सुखी हो पाई हैं, क्या सत्यवती ने यही चाहा था?

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-2, अंक-8 (इंटरनेट संस्करण : 71)
अक्टूबर 2012

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
ओमप्रकाश कादयान

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>> 4
चिन्दी-चिन्दी होती हिन्दी

>> 8
पैरों से सिर की बढ़ती दूरी

>> 16
अपराधी जगत में अहिंसा...

>> 24
उधार का सोच

इस अंक में

विचार :	डॉ. अमरनाथ	4
चिट्ठी :	डॉ. सुभाष शर्मा	8
यात्रा-वृत्तांत :	देवशंकर नवीन	12
खोज-खबर :	नीलम कुलश्रेष्ठ	16
तथ्य :	डॉ. राघबेन्द्र झा	18
बातचीत :	मधु अरोड़ा	20
नजरिया :	राजकिशोर	24
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	26
चिन्तन :	बृजेन्द्र श्रीवास्तव	30
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	33
गीता-सार :	अनिल विद्यालंकार	34
प्रश्नोत्तरी :	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	35
पंचतंत्र :		36
महाभारत :		38
अनुवाद :	अमिताभ देव चौधरी	40
कविता :	डॉ. माधवी सिंह	43
	डॉ. शिव गौतम	44
	शेर सिंह	45
	जगदीश चंद्र ठाकुर	46
ग़ज़ल :	पूजा भाटिया 'प्रीत'	47
	मुईन शमसी	48
दोहे :	डॉ. देवेन्द्र मोहन मिश्रा	49
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	50
कहानी :	तेजेन्द्र शर्मा	51
किताब :	डॉ. मधु सन्धु	58
खबर :		60
आपकी बात :		63

डॉ. अमरनाथ

१९५४ में रामपुर बुजुर्ग, गोरखपुर में जन्म. गोरखपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. और पी-एच.डी की उपाधियां प्राप्त. आधा दर्जन से अधिक आलोचना की पुस्तकों का सम्पादन. संप्रति - कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर और भारतीय हिन्दी परिषद् के उपसभापति.

सम्पर्क : ईई-१६४ / ४०२, सेक्टर-२, साल्टलेक, कोलकाता-७०००९१ ई-मेल : amaranth.cu@gmail.com

विचार

चिन्दी-चिन्दी होती हिन्दी

जातीय चेतना जहाँ सजग और मजबूत नहीं होती वहाँ वह अपने समाज को विपथित भी करती हैं. समय-समय पर उसके भीतर विखंडनवादी शक्तियाँ सिर उठाती रहती हैं. विखंडन व्यापक साम्राज्यवादी षड्यंत्र का ही एक हिस्सा है. दुर्भाग्य से हिन्दी जाति की जातीय चेतना मजबूत नहीं है और इसीलिए वह लगातार टूट रही है. अस्मिताओं की राजनीति आज के युग का एक प्रमुख साम्राज्यवादी एजेंडा है. साम्राज्यवाद यही सिखाता है कि थिंक ग्लोबली एक्ट लोकली. जब संविधान बना तो मात्र १३ भाषाएं आठवीं अनुसूची में शामिल थीं. फिर १४, १८ और अब २२ हो चुकी हैं. अकारण नहीं है कि जहाँ एक ओर दुनिया ग्लोबल हो रही है तो दूसरी ओर हमारी भाषाएं यानी अस्मिताएं टूट रही हैं और इसे अस्मिताओं के उभार के रूप में देखा जा रहा है. हमारी दृष्टि में ही दोष है. इस दुनिया को कुछ दिन पहले जिस प्रायोजित विचारधारा के लोगों द्वारा ग्लोबल विलेज कहा गया था उसी विचारधारा के लोगों द्वारा हमारी भाषाओं और जातीयताओं को टुकड़ो-टुकड़ो में बांट करके कमजोर किया जा रहा है.

> *हिन्दुस्तान की कौन-सी भाषा है जिसमें बोलियां नहीं हैं? गुजराती में सौराष्ट्री, गामड़िया, खाकी आदि, असमिया में क्षखा, मयांग आदि, ओड़िया में संभलपुरी, मुघलबंक्षी आदि, बंगला में बारिक, भटियारी, चिरमार, मलपहाड़िया, सिरिपुरिया आदि.*

भोजपुरी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की मांग समय-समय पर संसद में होती रही है. श्री प्रभुनाथ सिंह, रघुवंश प्रसाद सिंह, संजय निरूपम, अली अनवर अंसारी, योगी आदित्य नाथ जैसे सांसदों ने समय-समय पर यह मुद्दा उठाया है. मामला सिर्फ भोजपुरी को संवैधानिक मान्यता देने का नहीं है. मध्यप्रदेश से अलग होने के बाद छत्तीसगढ़ ने अपने राज्य की राजभाषा छत्तीसगढ़ी घोषित किया और विधान सभा में प्रस्ताव पारित करके उसे संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग की. यही स्थिति राजस्थानी की भी है. हकीकत यह है कि जिस राजस्थानी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग जोरों से की जा रही है उस नाम की कोई भाषा वजूद में है ही नहीं. राजस्थान की ७४ में से सिर्फ ९ (ब्रजी, हाड़ौती, बागड़ी, ढूंढाड़ी, मेवाड़ी, मेवाती, मारवाड़ी, मालवी, शेखावटी) बोलियों को राजस्थानी नाम देकर संवैधानिक दर्जा देने की मांग की जा रही है. बाकी बोलियों पर चुप्पी क्यों? इसी तरह छत्तीसगढ़ में ९४ बोलियां हैं

जिनमें सरगुजिया और हालवी जैसी समृद्ध बोलियां भी है. छत्तीसगढ़ी को संवैधानिक दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ने वालों को इन छोटी-छोटी उप बोलियां बोलने वालों के अधिकारों की चिन्ता क्यों नहीं है? पिछले दिनों केन्द्रीय गृहराज्य मंत्री ने लोक सभा में एक चर्चा को दौरान कुमांयूनी-गढ़वाली को संवैधानिक दर्जा देने का आश्वासन दिया. इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा कि यदि हरियाणा सरकार हरियाणवी के लिए कोई संस्तुति भेजती है तो उस पर भी विचार किया जाएगा. मैथिली तो पहले ही शामिल हो चुकी है. फिर अवधी

> "अस्मिताओं की राजनीति करने वाले कौन लोग हैं? कुछ गिने-चुने नेता, कुछ अभिनेता और कुछ स्वनामधन्य बोलियों के साहित्यकार. नेता जिन्हें स्थानीय जनता से वोट चाहिए. उन्हें पता होता है कि किस तरह अपनी भाषा और संस्कृति की भावनाओं में बहाकर गाँव की सीधी-सादी जनता का मूल्यवान वोट हासिल किया जा सकता है."

और ब्रजी ने कौन सा अपराध किया है कि उन्हें आठवीं अनुसूची में जगह न दी जाय जबकि उनके पास रामचरितमानस और पद्मावत जैसे ग्रंथ हैं? हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूरा मध्यकाल तो ब्रज भाषा में ही लिखा गया. इसी के भीतर वह कालखण्ड भी है जिसे हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग (भक्ति काल) कहते हैं.

भागलपुर विश्वविद्यालय में अंगिका में भी एम.ए. की पढ़ाई होती है. मैंने वहाँ के एक शिक्षक से पूछा कि अंगिका में एम.ए. की पढ़ाई करने वालों का भविष्य क्या है? उन्होंने बताया कि उन्हें सिर्फ डिग्री से मतलब होता है विषय से नहीं. एम.ए. की डिग्री मिल जाने से एल.टी. ग्रेड के शिक्षक को पी.जी. (प्रवक्ता) का वेतनमान मिलने लगता है. वैसे नियमित कक्षाएं कम ही चलती हैं. जिन्हें डिग्री की लालसा होती है वे ही प्रवेश लेते हैं और अमूमन सिर्फ परीक्षा देने आते हैं. जिस शिक्षक से मैंने प्रश्न किया उनका भी एक उपन्यास कोर्स में लगा है जिसे इसी उद्देश्य से उन्होंने अंगिका में लिखा है मगर हैं वे हिन्दी के प्रोफेसर. वे रोटी तो हिन्दी की खाते हैं किन्तु अंगिका को संवैधानिक दर्जा दिलाने की लड़ाई लड़ रहे हैं जिसके पीछे उनका यही स्वार्थ है. अंगिका के लोग अपने पड़ोसी मैथिली वालों पर आरोप लगाते हैं कि उन लोगों ने जिस साहित्य को अपना बताकर पेश किया है और संवैधानिक दर्जा हासिल किया है उसका बहुत सा हिस्सा वस्तुतः अंगिका का है. इस तरह पड़ोस की मैथिली ने उनके साथ धोखा किया है. यानी, बोलियों के आपसी अंतर्विरोध. अस्मिताओं की वकालत करने वालों के पास इसका क्या जवाब है?

संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हिन्दुस्तान की कौन-सी भाषा है जिसमें बोलियां नहीं हैं? गुजराती में सौराष्ट्री, गामड़िया, खाकी आदि, असमिया में क्षखा, मयांग आदि, ओड़िया में संभलपुरी, मुघलबंक्षी आदि, बंगला में बारिक, भटियारी, चिरमार, मलपहाड़िया, सामरिया, सराकी, सिरिपुरिया आदि, मराठी में गवड़ी, कसारगोड़, कोस्ती, नागपुरी, कुड़ाली आदि. इनमें तो कहीं भी अलग होने का आन्दोलन सुनायी नहीं दे रहा है. बंगला तक में नहीं, जहां अलग देश है. मैं बंगला में लिखना पढ़ना जानता हूं किन्तु ढाका की बंगला समझने में बड़ी असुविधा होती है.

अस्मिताओं की राजनीति करने वाले कौन लोग हैं? कुछ गिने-चुने नेता, कुछ अभिनेता और कुछ स्वनामधन्य बोलियों के साहित्यकार. नेता जिन्हें स्थानीय जनता से वोट चाहिए. उन्हें पता होता है कि किस तरह अपनी भाषा और संस्कृति की भावनाओं में बहाकर गाँव की सीधी-सादी जनता का मूल्यवान वोट हासिल किया जा सकता है.

इसी तरह भोजपुरी का अभिनेता रवि किसन यदि भोजपुरी को संवैधानिक मान्यता दिलाने के लिए संसद के सामने धरना देने की धमकी देता है तो उसका निहितार्थ समझ में आता है क्योंकि, एक बार मान्यता मिल जाने के बाद उन जैसे कलाकारों और उनकी फिल्मों को सरकारी खजाने से भरपूर धन मिलने लगेगा. शत्रुघ्न सिन्हा ने लोकसभा में यह मांग उठाते हुए दलील दी थी कि इससे भोजपुरी फिल्मों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्यता और वैधानिक दर्जा दिलाने में काफी मदद मिलेगी.

बोलियों को संवैधानिक मान्यता दिलाने में वे साहित्यकार सबसे आगे हैं जिन्हें हिन्दी जैसी समृद्ध भाषा में पुरस्कृत और सम्मानित होने की उम्मीद टूट चुकी है. हमारे कुछ मित्र तो

इन्हीं के बल पर हर साल दुनिया की सैर करते हैं और करोड़ों का वारा-न्यारा करते हैं. स्मरणीय है कि नागार्जुन को साहित्य अकादमी पुरस्कार उनकी मैथिली कृति पर मिला था किसी हिन्दी कृति पर नहीं. बुनियादी सवाल यह है कि आम जनता को इससे क्या लाभ होगा?

एक ओर सैम पित्रोदा द्वारा प्रस्तावित ज्ञान आयोग की रिपोर्ट जिसमें इस देश के ऊपर के उच्च मध्य वर्ग को अंग्रेज बनाने की योजना है और दूसरी ओर गरीब गँवार जनता को उसी तरह कूप मंडूक बनाए रखने की साजिश. इस साजिश में कारपोरेट दुनिया की क्या और कितनी भूमिका है यह शोध का विषय है. मुझे उम्मीद है कि निष्कर्ष चौंकाने वाले होंगे.

> *हिन्दी की तमाम बोलियां अपने अधिकारों का दावा करते हुए संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हो गईं तो हिन्दी की राष्ट्रीय छवि टूट जाएगी और राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी हैसियत भी संदिग्ध हो जाएगी.*

वस्तुतः साम्राज्यवाद की साजिश हिन्दी की शक्ति को खण्ड-खण्ड करने की है क्योकि बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिन्दी, दुनिया की सबसे बड़ी दूसरे नंबर की भाषा है. इस देश में अंग्रेजी के सामने सबसे बड़ी चुनौती हिन्दी ही है. इसलिए हिन्दी को कमजोर करके इस देश की सांस्कृतिक अस्मिता को, इस देश की रीढ़ को आसानी से तोड़ा जा सकता है. अस्मिताओं की राजनीति के पीछे साम्राज्यवाद की यही साजिश है.

जो लोग बोलियों की वकालत करते हुए अस्मिताओं के उभार को जायज ठहरा रहे हैं वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ा रहे हैं, खुद व्यवस्था से साँठ-गाँठ करके उसकी मलाई खा रहे हैं और अपने आस-पास की जनता को जाहिल और गंवार बनाए रखना चाहते हैं ताकि भविष्य में भी उन पर अपना वर्चस्व कायम रहे. जिस देश में खुद राजभाषा हिन्दी अब तक ज्ञान की भाषा न बन सकी हो

वहाँ भोजपुरी, राजस्थानी, और छत्तीसगढ़ी के माध्यम से बच्चों को शिक्षा देकर वे उन्हें क्या बनाना चाहते हैं? जिस भोजपुरी, राजस्थानी या छत्तीसगढ़ी का कोई मानक रूप तक तय नहीं है, जिसके पास गद्य तक विकसित नहीं हो सका है उस भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कराकर उसमें मेडिकल और इंजीनियरी की पढ़ाई की उम्मीद करने के पीछे की धूर्त मानसिकता को आसानी से समझा जा सकता है.

अगर बोलियों और उसके साहित्य को बचाने की सचमुच चिन्ता है तो उसके साहित्य को पाठ्यक्रमों में शामिल कीजिए, उनमें फिल्में बनाइए, उनका मानकीकरण कीजिए. उन्हें आठवीं अनुसूची में शामिल करके हिन्दी से अलग कर देना और उसके समानान्तर खड़ा कर देना तो उसे और हिन्दी, दोनों को कमजोर बनाना है और उन्हें आपस में लड़ाना है.

बंगाल की दुर्गा पूजा मशहूर है. मैं जब भी हिन्दी के बारे में सोचता हूं तो मुझे दुर्गा का मिथक याद आता है. दुर्गा बनी कैसे? महिषासुर से त्रस्त सभी देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए थे. अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम. एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा. अर्थात् सभी देवताओं के शरीर से प्रकट हुए उस तेज की कहीं तुलना नहीं थी. एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से तीनो लोकों में व्याप्त हो गया. तब जाकर महिषासुर का वध हो सका.

हिन्दी भी ठीक दुर्गा की तरह है. जैसे सारे देवताओं ने अपने-अपने तेज दिए और दुर्गा बनी वैसे ही सारी बोलियों के समुच्चय का नाम हिन्दी है. यदि सभी देवता अपने-अपने तेज वापस ले लें तो दुर्गा खत्म हो जाएगी, वैसे ही यदि सारी बोलियां अलग हो जायँ तो हिन्दी के पास बचेगा क्या? हिन्दी का अपना क्षेत्र कितना है? वह दिल्ली और मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली कौरवी से विकसित हुई है. हम हिन्दी

साहित्य के इतिहास में चंदबरदायी और मीरा को पढ़ते है जो राजस्थानी के हैं, सूर को पढ़ते हैं जो ब्रजी के हैं, तुलसी और जायसी को पढ़ते हैं जो अवधी के हैं, कबीर को पढ़ते हैं जो भोजपुरी के हैं और विद्यापति को पढ़ते हैं जो मैथिली के हैं. इन सबको हटा देने पर हिन्दी साहित्य में बचेगा क्या?

अपने पड़ोसी नेपाल में सन् २००१ में जनगणना हुई थी. उसकी रिपोर्ट के अनुसार वहाँ अवधी बोलने वाले २.४७ प्रतिशत, थारू बोलने वाले ५.८३ प्रतिशत, भोजपुरी बोलने वाले ७.५३ प्रतिशत और सबसे अधिक मैथिली बोलने वाले १२.३० प्रतिशत हैं. वहाँ हिन्दी बोलने वालों की संख्या सिर्फ १ लाख ५ हजार है. यानी, बाकी लोग हिन्दी जानते ही नहीं. मैंने कई बार नेपाल की यात्रा की है. काठमांडू में भी सिर्फ हिन्दी जानने से काम चल जाएगा. नेपाल में एक करोड़ से अधिक सिर्फ मधेसी मूल के हैं. भारत से बाहर दक्षिण एशिया में सबसे अधिक हिन्दी फिल्में यदि कहीं देखी जाती हैं तो वह नेपाल है. ऐसी दशा में वहाँ हिन्दी भाषियों की संख्या को एक लाख पाँच हजार बताने से बढ़कर बेईमानी और क्या हो सकती है? हिन्दी को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटकर जनगणना करायी गई और फिर अपने अनुकूल निष्कर्ष निकाल लिया गया.

ठीक यही साजिश भारत में भी चल रही है. हिन्दी की सबसे बड़ी ताकत उसकी संख्या है. इस देश की आधी से अधिक आबादी हिन्दी बोलती है और यह संख्या बल बोलियों के नाते है. बोलियों की संख्या मिलकर ही हिन्दी की संख्या बनती है. यदि बोलियां आठवीं अनुसूची में शामिल हो गईं तो आने वाली जनगणना में मैथिली की तरह भोजपुरी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी आदि को अपनी मातृभाषा बताने वाले हिन्दी भाषी नहीं गिने जाएंगे और तब हिन्दी तो मातृ-भाषा बताने वाले गिनती के रह जाएंगे, हिन्दी की संख्या बल की ताकत स्वतः खत्म हो जाएगी और तब अंग्रेजी को भारत की राजभाषा बनाने के पक्षधर उठ खड़े होंगे और उनके पास उसके लिए अकाट्य वस्तुगत तर्क होंगे. (अब तो हमारे देश के अनेक काले अंग्रेज बेशर्मी के साथ अंग्रेजी को भारतीय भाषा कहने भी लगे हैं.) उल्लेखनीय है कि सिर्फ संख्या-बल की ताकत पर ही हिन्दी, भारत की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है.

> हिन्दी क्षेत्र की विभिन्न बोलियों के बीच एकता का सूत्र यदि कोई है तो वह हिन्दी ही है. हिन्दी और उसकी बोलियों के बीच परस्पर पूरकता और सौहार्द्र का रिश्ता है. हिन्दी इस क्षेत्र की जातीय भाषा है जिसमें हम अपने सारे औपचारिक और शासन संबंधी काम काज करते हैं.

हिन्दी क्षेत्र की विभिन्न बोलियों के बीच एकता का सूत्र यदि कोई है तो वह हिन्दी ही है. हिन्दी और उसकी बोलियों के बीच परस्पर पूरकता और सौहार्द्र का रिश्ता है. हिन्दी इस क्षेत्र की जातीय भाषा है जिसमें हम अपने सारे औपचारिक और शासन संबंधी काम काज करते हैं. यदि हिन्दी की तमाम बोलियां अपने अधिकारों का दावा करते हुए संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हो गईं तो हिन्दी की राष्ट्रीय छवि टूट जाएगी और राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी हैसियत भी संदिग्ध हो जाएगी.

इतना ही नहीं, इसका परिणाम यह भी होगा कि मैथिली, ब्रजी, राजस्थानी आदि के साहित्य को विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रमों से हटाने के लिए हमें विवश होना पड़ेगा. विद्यापति को अब तक हम हिन्दी के पाठ्यक्रम में पढ़ाते आ रहे थे . अब हम उन्हें पाठ्यक्रम से हटाने के लिए बाध्य हैं. क्या कोई साहित्यकार चाहेगा कि उसके पाठकों की दुनिया सिमटती जाये?

हिन्दी (हिन्दुस्तानी) जाति इस देश की सबसे बड़ी जाति है. वह दस राज्यों में फैली हुई है. इस देश के अधिकाँश प्रधानमंत्री हिन्दी जाति ने दिए हैं. भारत की राजनीति को हिन्दी जाति दिशा देती रही है. इसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न करना है. इनकी बोलियों को संवैधानिक दर्जा दो. इन्हें एक-दूसरे के आमने-सामने करो. इससे एक ही तीर से कई निशाने लगेंगे. हिन्दी की संख्या बल की ताकत स्वतः खत्म हो जाएगी. हिन्दी भाषी आपस में बँटकर लड़ते रहेंगे और ज्ञान की भाषा से दूर रहकर कूपमंडूक बने रहेंगे. बोलियाँ हिन्दी से अलग होकर अलग-थलग पड़ जाएंगी और स्वतः कमजोर पड़कर खत्म हो जाएंगी.

चीनी का सबसे छोटा दाना पानी में सबसे पहले घुलता है. हमारे ही किसी अनुभवी पूर्वज ने कहा है, अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च. अजा पुत्रं बलिं दद्यात दैवो दुर्बल घातकः. अर्थात् घोड़े की बलि नहीं दी जाती, हाथी की भी बलि नही दी जाती और बाघ के बलि की तो कल्पना भी नही की जा सकती. बकरे की ही बलि दी जाती है. दैव भी दुर्बल का ही घातक होता है.

अब तय हमें ही करना है कि हम बाघ की तरह बनकर रहना चाहते हैं या बकरे की तरह.■

डॉ. सुभाष शर्मा

१९५१ में जलालाबाद, कन्नौज में जन्म. बी.ई. मेकेनिकल, एम.टेक. आईआईटी, दिल्ली तथा क्वींसलैंड यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलोजी, आस्ट्रेलिया से पीएचडी. आईआईटी, दिल्ली, अमेरिका एवं योरोप के अनेक विश्वविद्यालयों में अध्यापन. शोधकार्य के उपरांत आस्ट्रेलिया में बस गये. कविता लिखते हैं एवं मेलबर्न शहर में 'साहित्य संध्या' के नाम से कवि गोष्ठियों का आयोजन. ऑस्ट्रेलिया में रेडियो, टेलीविजन पर आयोजित कवि गोष्ठियों में शिरकत. ऑस्ट्रेलिया के ११ हिन्दी कवियों के कविता संग्रह 'बूम रैंग' में सह-सम्पादक. सम्प्रति - सेन्ट्रल क्वींसलैंड यूनिवर्सिटी में मेंटीनेंस मैनेजमेंट विभाग के अध्यक्ष हैं.

सम्पर्क : sharmalog@gmail.com

चिट्ठी

पैरों से सिर की बढ़ती दूरी

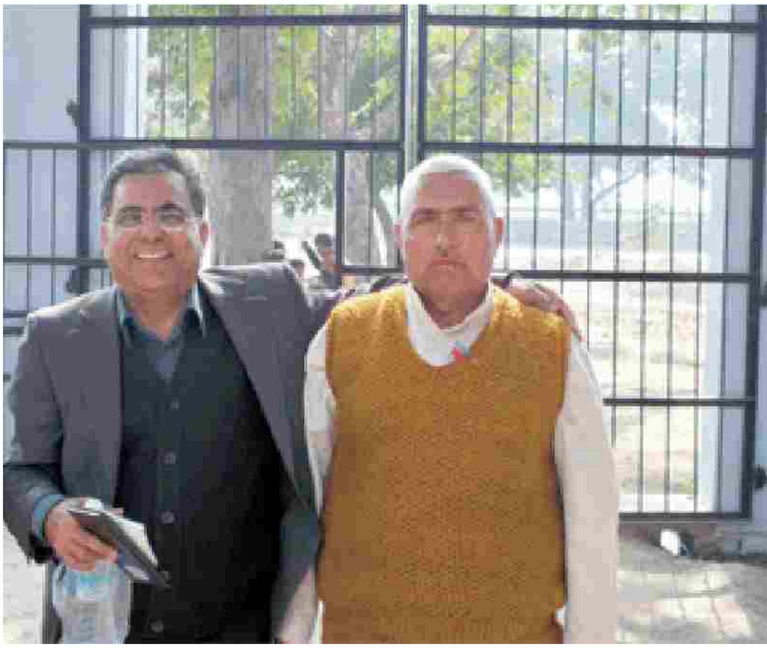

प्रिय मित्र श्यामबिहारीजी,

एक वर्ष से अधिक बीतने को आया और मैं सोचता ही रहा कि पत्र लिखूंगा और लिख नहीं पाया.

यूं तो बहाना आसान है कि समय नहीं मिला. व्यस्त अवश्य हूँ पर इतना भी नहीं कि एक पत्र न लिख सकूं. सच यह कि ऐसे पत्र लिखने के लिए एकांत चाहिए. ऐसा एकांत कि बचपन में खो जाऊं और स्कूल की उन सब यादों का आनंद ले सकूं जो दुनिया की भाग दौड़ में खो चुकी हैं. जब तुमसे मिला था तो गाँव २० साल बाद आया था. हवाई जहाज में इतनी उत्सुकता थी कि इस बार गाँव नहीं जैसे कोई तीरथ करने जा रहा हूँ. लगता था क्या मैं लोगों को पहचान पाऊंगा? क्या लोग मुझे पहचान पाएंगे. स्कूल देखने की बड़ी तीव्र इच्छा थी पर यह आभास न था कि कोई जानकार भी वहां मिल पाएगा और सोच रहा था कि बस दीबारों से बातें करके आ जाऊंगा.

कितनी प्रसन्नता हुई तुम्हें देख कर और कितना चकित हुआ जब तुमने मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा. तुमसे मिलते ही तुम्हारे चेहरे पर मैं तुम्हारा नाम पढ़ने लगा कि तुमने झट से कहा अरे यह तो सुल्हड़ हैं. कितनी खुशी हुई कि गाँव से भले ही चला गया हूँ , अपने सहपाठियों के हृदय में अभी भी बसा हूँ. तुम्हें पता नहीं होगा कि मुझे कितनी ग्लानि हो रही थी कि मैं तुम्हें अच्छी तरह से पहचान रहा था पर तुम्हारे चेहरे को नाम नहीं दे पा रहा था. तुम मोटे भले ही हो गये हो, तुम्हारे बाल भी सफेद हो गये हैं पर तुम्हारा बचपन का चेहरा अभी भी तुम्हारे भोलेपन का गवाह है. तुम्हारा सुबह की स्कूल प्रार्थना में आगे रहना, सुर से कविता पाठ करना सब कुछ याद आया. साथ ही तुम्हारे पिताजी की तस्वीर भी मेरी आँखों पर छा गयी थी.

> मेरे आसपास अब कोई ऐसा नहीं जिसके साथ यह यादें बाँट सकूं. बच्चे सुनते ध्यान से हैं पर महसूस नहीं कर पाते. वह मेरे जीवन की घटनाओं को एक उपन्यास की अच्छी भूमिका समझते हैं.

तुम तो मेरे प्राइमरी स्कूल के भी सहपाठी हो इसलिए पूरणमल, गुरबक्श सिंह, दफेदार सिंह, छेदालाल सबकी याद में मेरा मन उतने ही समय में भटक गया. शिवा जी की मार से लेकर रात के स्कूल में लालटेन में पढ़ना और बेर की गुठली अँधेरे में दूसरों पर फेकना सब जैसे किसी ने चलचित्र की फिल्म को तेजी से घुमा दिया हो. ओमप्रकाश के सुन्दर सुलेख को मैं स्कूल की दीवार पर ढूंढ रहा था. उस मौलश्री के पेड़ की छाँव जहाँ हम पानी भरते थे फिर बैठने को जी कर रहा था.

मैं तुम्हारी हुलिया देख कर अपने कृषि के अध्यापक जगदीश चन्द्रजी की छवि तुम में देख रहा था. याद होगा कि वह उसी क्वाटर में रहते थे जहां से तुमने चाय कुल्हड़ में मंगाई थी. वह सच में ही ज्ञानी थे और ज्ञान की बाते करते थे, बहुत ही सात्विक विचार के थे. उन्होंने एक दिन पूरी कक्षा से पूछा था कि तुम क्या बनाना चाहोगे और मैंने कहा था कि मैं एक वैज्ञानिक बनूंगा. आज मैं उनके आशीर्वाद से एक इंजीनियर के साथ वैज्ञानिक भी हूँ. यह सब कुछ यज्ञदत्त जी की वजह से हुआ. यज्ञदत्त जी ने मेरे जीवन में एक अमर छाप छोड़ी है. मुझे उनसे ही यह ज्ञान हुआ था कि वैज्ञानिक क्या होता है. वरना मैं इंजीनियर को ही वैज्ञानिक समझता था.

> *ऑस्ट्रेलिया में मेरे बच्चों ने स्कूलों में अंगरेजी प्रतियोगिता में जब-जब ट्रॉफी जीती तो मुझे अपने गुरू यज्ञदत्त जी की याद आई. अगर उन्होंने दीपक में आग न लगाई होती तो जीवन में इतना प्रकाश नहीं होता. तुमने बताया वह साधू हो गये हैं. ऐसा ज्ञानी तथा कठिन परिस्थितियों से गुजरने वाला व्यक्तित्व भला और क्या हो सकता है.*

यज्ञदत्त जी ने मुझे एक बार बहुत तंग किया. मुझसे कहा एक वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लो. विषय था ‘भारत की तटस्थ नीति ही भारत को उन्नति के शिखर पर ले जा सकती है.’ मैं बार- बार तटस्थ शब्द के उच्चारण में गलती कर देता था. मैं रो दिया और कहा कि मैं इस प्रतियोगिता में भाग नहीं लूंगा.

मुझे गुस्सा आता था कि यह अपने साले ओंकार से इस प्रतियोगिता में भाग लेने को क्यों नहीं कहते. जब पता है मैं नहीं कर सकता फिर मेरे पीछे क्यों पड़े हैं. पर उन्होंने मुझे डाँट लगाई और कहा मैं इतने साल से पढ़ा रहा हूँ मुझे पता है कौन सा दीपक रोशनी देता है कौन नहीं. तुम्ही इस प्रतियोगिता में भाग लोगे. अब मेरे पास और कोई उपाय न था, मैंने प्रतियोगिता में भाग लिया तथा जब डर से भूल गया कि आगे क्या बोलना है तो जैसा उन्होंने रटने को कहा था मैंने कहा ‘मैं डंके की चोट पर कह सकता हूँ कि भारत की तटस्थ नीति ही भारत को उन्नति के शिखर पर ले जाएगी’ और लोग जोर से ताली बजाने लग गए.

मैं प्रतियोगिता में जीत नहीं पाया यह सच है पर यज्ञदत्त जी ने मुझे हताश नहीं किया. मैं चकित हुआ कि उन्होंने मुझे बिलकुल ही नहीं डाटा और इस तरह यज्ञदत्त जी ने जो दीपक में आग जलाई वह बराबर जलती रही. मैंने उसके बाद यूनिवर्सिटी में अनकों वाद-विवाद प्रतियोगिताएं जीती और मैं इतना प्रोत्साहित हुआ कि मैंने इसी योग्यता के बूते जोधपुर विश्वविद्यालय के वाईस प्रेसीडेंट का चुनाव लड़ने की ठानी और जब मैं भाषण देता था तो लोग काम छोड़ कर मेरा भाषण सुनने आते थे. मेरे साथ अशोक गहलौत (राजस्थान के मुख्यमंत्री) भी यूनिवर्सिटी के प्रेसीडेंट के लिए चुनाव लड़ रहे थे. हम दोनों ही चुनाव हार गए पर हिम्मत नहीं हारी और भाषण देना यज्ञदत्त जी का आशीर्वाद समझ कर आईआईटी की शिक्षक संघ का वाइस प्रेसीडेंट बना. नार्वे देश के इंटरनेश्नल क्लब का प्रेसीडेंट बना और बाद में अपने बच्चों को भी इसके लिए प्रोत्साहित किया और सदा यज्ञदत्त जी का किस्सा सुनाया.

उनके ही आशीर्वाद से ऑस्ट्रेलिया में मेरे बच्चों ने स्कूलों में अंगरेजी प्रतियोगिता में जब-जब ट्रॉफी जीती तो मुझे अपने गुरू यज्ञदत्त जी की याद आई. अगर उन्होंने दीपक में आग न लगाई होती तो जीवन में इतना प्रकाश नहीं होता. तुमने बताया वह साधू हो गये हैं. ऐसा ज्ञानी तथा कठिन परिस्थितियों से गुजरने वाला व्यक्तित्व भला और क्या हो सकता है. मुझे उनके साले ओंकार की भी याद है. दुबला पतला सौम्य स्वभाव का था वह. मेरा अच्छा मित्र भी था. उनके बारे में बहुत कुछ बताता रहता था. मुझे पता है वह त्यागी पुरुष हैं. उन्होंने भी जीवन में बहुत दुःख झेले हैं.

यज्ञदत्त जी से मिलने की प्रबल इच्छा है आशा है एक दिन जरूर पूरी होगी. तुम अब जब उनसे मिलो तो मेरा प्रणाम कहना, उन्हें बताना कि मेरी बड़ी इच्छा थी कि पीएचडी फिजिक्स में करता, पर उनके जैसा अच्छा पढ़ाने वाला फिजिक्स का शिक्षक फिर दुबारा नहीं मिला इस लिए इंजीनियर बना और पीएचडी भी उसी में की. उनको यह भी

बताना कि मेरा जी करता था कि अगर अध्यापक बनूँ तो उनके जैसा ही. उनको जिज्ञासा होगी कि मैं क्या हूँ, कहाँ हूँ. बताना ऑस्ट्रेलिया में पढ़ाता हूँ. परिवार में पत्नी तथा दो बच्चे हैं. कहना मैं यूनिवर्सिटी में अध्यापन करता हूँ और आज भी सपने देखता हूँ कि काश मैं भी उनके आदर्शों को कभी छू पाता. अगर वह कुछ और पूछें तो कहना कि ऐसा कैसा दीपक आपने जलाया जो अपनी खुद की परछाई नहीं ढूंढ पा रहा है. दीपक ऊपर तो

> *विष्णुचंद और रजनीश मेरे घनिष्ट मित्र थे पर अब सब यादों के दोस्त हैं. पता नहीं उन्हें भी याद होगा कि नहीं कि मैं उनके साथ पढ़ा था. कभी मिलो तो बताना कि मुझे आज भी टाटफट्टे पर बैठकर पढ़ना याद है. मेरे बच्चे हँस देते हैं. उन्हें विश्वास नहीं होता.*

प्रकाश कर रहा है पर उसके नीचे अन्धेरा क्यों है. उन्हें यह मत बताना कि शिक्षा अब व्यापार बन चुकी है. कुलपति अब व्यापारी बनते हैं, उप कुलपति जायदादों के दलाल बन रहे हैं. तरक्की वह कर रहे हैं जो पढ़ाना नहीं चाहते और वही बाद में सिखाते हैं कैसे पढ़ाना चाहिए. हो सकता है उन्हें यह मालूम भी हो पर यह बात छेड़ कर उन्हें दुखी मत करना. उन्हें यह अवश्य बताना कि मैं कुशल से हूँ और उन्हें प्रायः याद करता हूँ.

प्रभाकर, विष्णुचंद और रजनीश मेरे घनिष्ट मित्र थे पर अब सब यादों के दोस्त हैं. पता नहीं उन्हें भी याद होगा कि नहीं कि मैं उनके साथ पढ़ा था. कभी मिलो तो बताना कि मुझे आज भी टाटफट्टे पर बैठकर पढ़ना याद है. मेरे बच्चे हँस देते हैं. उन्हें विश्वास नहीं होता. यद्यपि मेरे आसपास अब कोई ऐसा नहीं जिसके साथ यह यादें बाँट सकूं. बच्चे सुनते ध्यान से हैं पर महसूस नहीं कर पाते. वह मेरे जीवन की घटनाओं को एक उपन्यास की अच्छी भूमिका समझते हैं. भारतीय समुदाय के लोग प्रायः मेहनती हैं इसलिए उन्हें फुर्सत नहीं मिलती और अंग्रेजों से अगर कहूं भी तो उन्हें इनकी गहराई क्या पता जो अपने बच्चों और बीबी पर ही ऐतबार नहीं करते. पता नहीं तुम्हें याद है कि नहीं. एक रामिन्दुर भुर्जी पपियापुर वाले के मैं गाँव जा चुका हूँ, प्राइमरी स्कूल में राजा रामरैदास, बाबू राम तरपुराबा वाला भी हमारा सहपाठी था. प्राइमरी स्कूल के बाद पढ़ाई छोड़ दी थी. कभी मिले तो मेरी राम राम कहना.

तुम्हे याद होगा मिडिल के इम्तिहान से पहले पंडित छेदालाल भरे जाड़े में पढ़ाने के लिए स्कूल में हम सबको बुलाया करते थे. वैसे तो झिझक लगती है क्योंकि अब तुम खुद हेड मास्टर बन गए हो पर मुझे याद है मेरी अम्मा और बिसुन चंद की अम्मा कहा करती थीं कि यह इन मास्टरों की चालबाजी है. रात को स्कूल में पढ़ाने के लिए बुलाते हैं और इस बहाने सबसे लालटेन जलाने के लिए मिट्टी का तेल मंगवाते हैं. तेल जो बचता होगा आराम से अपने घर ले जाते होंगे. ऊपर से जब रिजल्ट अच्छा आता है तो डिप्टी साहब मोयना के वक्त अपने आप ही तारीफ़ करेंगे.

मैंने जब यह किस्सा अपने बच्चों को सुनाया तो पूछने लगे कि आपके टीचर भी ग्रुप ट्यूशन करते थे? तब मेरी पत्नी ने कहा बेबकूफ अगर वो इतने ही होशियार होते तो मिट्टी का तेल क्यों मंगाते. उसके भी पैसे लेते और मेरे बच्चे कहने लगे ओ गाड सच में फ्री में पढ़ाते थे. आज मैं अपने बच्चों की ट्यूटर के बारे में सोचता हूँ यहाँ शहर की सबसे टाप की अंगरेजी की टीचर है. आधा घंटे के साठ डालर यानी के ३००० रुपए लेती है और एक मिनट फालतू नहीं देती क्योंकि बच्चे लाइन में लगे होते हैं. वह वही बच्चे लेती है जो डॉक्टर या बैरिस्टर बनाना चाहते हैं. हाँ पर एक बात तो है कि उसके रिजल्ट सेन्ट परसेंट होते हैं. जब मेरे बच्चे मेरे शिक्षकों के बारे में कहते हैं 'देवर फूल्स' तो मेरा चेहरा तमतमा उठता है और मन ही मन मैं कहता हूँ क्यों नहीं उन बेबकूफ टीचरों का ही मैं भी एक बेबकूफ विद्यार्थी हूँ जो ■

अपनी औलाद को काबिल बनाने के लिए इतने पैसे खर्च रहा हूँ. बेटा तुम भी जब डॉक्टर बन जाओगे उस दिन आधा घंटे के सैकड़ों डालर या हजारों रुपए कमाओगे. श्याम बिहारी जी शायद तुम मेरी पीड़ा समझ गए होगे. पर तुम यह सब बातें सीरिअसली मत लेना, यह तो प्रगति का प्रसाद है.

तुम्हारे छोटे से कुल्हड़ की चाय में क्या स्वाद था. मेरा भतीजा मेरे साथ था. वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था. उसे नहीं समझ आ रहा था कि चाचा एक चाय के लिए अपना कीमती समय क्यों बर्बाद कर रहे हैं, हमें शाम तक हर हाल में वापस कानपुर जाना है.

श्याम बिहारी जी मैं अपना और तुम्हारा तुम्हारे सहायक के साथ वाला चित्र के भेज रहा हूँ. अपने परिवारजनों या हमारे बचपन के मित्र मिले तो बताना कि मैं तुमसे मिला था और मुझे तुम सब की याद कभी कभी आती है. उन्हें बताना मुझे विदेश में रह कर अभी भी अपने गाँव और स्कूल याद आते हैं. जिन्दगी की भाग दौड़ में कुछ पता नहीं चला. गाँव जाने की बात चली तो सोचा फिर एक दिन जाएंगे. पर अब जब बच्चे बड़े हो गये हैं तब हमें अपना बचपन और याद आने लगा है और सच तो यह है कि मुझे अभी भी अपने गाँव के सपने रात को आते हैं. पर हमने जो जाल बुना है हम खुद ही उसमें फंसे हुए हैं और समर्थ कितने भी हो गए हों पर सामर्थ्य इतनी नहीं है कि घर बार छोड़ कर गाँव वापस भाग आएँ.

यद्यपि तुम गाँव में बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते हो. तुम्हारे चेहरे पर भी मुझे वैसी ही शांति नजर आती है जो मुझे अपने हेडमास्टरों में नजर आती थी. जी में आया इस पत्र में तुम्हें आप कह कर सम्बोधित करूँ पर पहले आप लिखा फिर काट दिया और जी नहीं माना लगा तुमसे अपने मन की कहूं.

> *तुम्हें याद होगा कि जब स्कूल में डिप्टी साहब मोयना को आते थे तो हमारे सभी हेडमास्टर जी उन्हें खुद बस से लेने जाते थे. वैसे कभी कोई और अध्यापक भी यह काम करता था. पर सच बताऊँ मुझे यह काम बिलकुल पसंद नहीं आता था कि मेरे गुरू लोग किसी अफसर का बिस्तर उठाएं.*

तुमने मुझसे मिलते ही कहा था सुल्हड़ तुम तो अब बड़े अफसर जैसे दिखने लगे हो. मुझे तो लगा जैसे कोई नए डिप्टी साहब अचानक स्कूल का मोयना करने आ गये हैं. अब तुम्हें पता चल गया होगा मैं इस बड़ेपन से कितना खुश हूँ.

मुझे डिप्टी साहब के नाम से एक बात और याद आ गई. तुम्हें याद होगा कि जब स्कूल में डिप्टी साहब मोयना को आते थे तो हमारे सभी हेडमास्टर जी उन्हें खुद बस से लेने जाते थे. वैसे कभी कोई और अध्यापक भी यह काम करता था. पर सच बताऊँ मुझे यह काम बिलकुल पसंद नहीं आता था कि मेरे गुरू लोग किसी अफसर का बिस्तर उठाएं. मेरे जी में आता था कि मैं उस डिप्टी के बच्चे को कहूं तेरी इतनी हिम्मत कैसे पड़ती है कि तू मेरे पूज्य गुरू जी से अपना बिस्तर उठवाता है या मैं अपने गुरू जी से ही कहूं कि आप यह काम क्यों करते हैं. वह एक अफसर है पर आप गुरू हैं. आप का दर्जा किसी भी अफसर से बड़ा है. पर उस समय उनसे बहुत डर लगता था. इस वजह से ना कभी उनसे कह पाया न ही डिप्टी साहब से. वैसे तो अब समय बदल गया है पर पता नहीं तुम क्या करते होगे. मेरी यह दिली इच्छा है कि यदि तुम यह काम करते हो तो बंद कर दो. तुम चाहोगे तो मैं तुम्हारी लड़ाई अपने ऊपर ले लूंगा वैसे भी तुम पुराने जमींदार परिवार के हो.

मेरे यहाँ के एक मित्र नलिन भूषण जो आईआईटी में मेरे समय में पढ़ाते थे कहते हैं कि हमें भी अपने देश के लिए कुछ तन-मन से करना चाहिए. धन से करने वाले तो अब भारत में ही बहुत हो गए हैं. कभी-कभी जी में आता है उन्हें भी साथ लाऊँ और मैं भी लालटेन में बच्चों को पढाऊँ. शायद यह एक ख्याली पुलाव हो फिर भी तुम्हें लगे कि मैं स्कूल के लिए कुछ कर सकता हूँ तो लिखना प्रयास करूंगा.

यज्ञदत्त जी को बताना कि उन्नति से सब सुख नहीं मिलते, जो मिलते हैं उन्हीं से संतोष करना पड़ता है.

स्कूल के विद्यार्थियों को बताना कि शायद तुममें से भी कोई और दीपक जले और दूर देश चला जाए. पर प्रगति आसान नहीं होती, पाना और खोना जीवन क्रम है और ऊंचाई से दूरी का गहरा सम्बन्ध है. आदमी जितना बड़ा या लंबा होता जाता है उसके पैरों से सिर की दूरी उतनी ही बढ़ती जाती है.

सुल्हड़
डॉ. सुभाष

■

देवशंकर नवीन

२ अगस्त १९६२ को जन्म. एम.ए., पी-एच.डी. (हिन्दी, मैथिली), एम.एस-सी. (भौतिकी), पुस्तक प्रकाशन, अनुवाद में पी.जी. डिप्लोमा. जी.एल.ए. कॉलेज, डालटनगंज में छह वर्षों तक अध्यापन तथा नेशनल बुक ट्रस्ट के संपादकीय विभाग से जुड़े रहे. मैथिली एवं हिन्दी में मूल तथा सम्पादित लगभग तीन दर्जन पुस्तकें प्रकाशित. अंग्रेजी सहित कई अन्य भारतीय भाषाओं में रचनाएँ अनूदित. मध्ययुगीन भक्ति साहित्य, राजकमल चौधरी का साहित्य, तुलनात्मक साहित्य, अनुवाद अध्ययन, एवं प्रकाशन तकनीक में विशेष रुचि. सम्प्रति - अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में अध्यापन.

सम्पर्क : ए-२/१९८, फेज-५, आयानगर एक्स्टेंशन, नई दिल्ली-११००४९ ई मेल : deoshankar@hotmail.com

यात्रा-वृत्तांत

तरक्की की राह पर चलते लोग

जिस समय सूरज ने न्यूयॉर्क सिटी का साथ छोड़ा, मैं वहाँ की धरती पर पाँव रख रहा था. अपनी ही जाँच-पड़ताल खुद करने की कोशिश की—कहीं मेरे पाँव लड़खड़ा तो नहीं रहे हैं, भयभीत तो नहीं हैं या फिर खुशी से लहरा तो नहीं रहे हैं. पर सब कुछ सामान्य था, कुछ असामान्य नहीं हो रहा था. कस्टम इत्यादि की जाँच प्रणाली से बाहर आकर अपना सामान लेने पावती घर की ओर बढ़ा. अनजान जगह पर पूछताछ तो करनी ही पड़ती है, पूछता गया, पहुँचता गया. अन्य हवाई अड्डों की तरह, यहाँ भी बड़ा-सा चक्का घूम रहा था, यात्रियों के सामान धड़ाधड़ उस पर गिरते जा रहे थे, लोग अपना-अपना सामान पहचान कर उठाते जा रहे थे, ट्राली पर लाद कर बाहर निकलते जा रहे थे. मैंने तय किया, सबसे पहले ट्राली ले आएँ. किनारे में एक जगह ट्राली की कतार लगी थी, लोग वहीं से ट्राली ले रहे थे. मैं भी वहाँ पहुँचा. मुझसे पहले पहुँचे यात्री ट्राली के पास खड़े खूँटे पर लगी मशीन में अपना क्रेडिट कार्ड घुसाकर, एक ट्राली लेकर निकल पड़ा. मैं ठिठक गया. फिर दूसरा यात्री आया, कुछ सिक्के, कुछ नोट, उस डब्बे में डाले, एक ट्राली लेकर चल पड़ा, मुझे लगा कि कुछ गड़बड़ है. मैंने पास से जाते एक अमेरिकी नागरिक से पूछा, पता लगा कि ट्राली लेने के लिए तीन डॉलर (लगभग १२० रुपए) उस डब्बे में डालने पड़ते हैं. मैं पड़ गया मुसीबत में. मेरे पास क्रेडिट कार्ड नहीं था, पचास डॉलर से कम का कोई नोट नहीं. दो चार लोगों से खुल्ले माँगने की कोशिश की, किसी ने हाँ नहीं कहा. भारी मुसीबत में पड़ गया. उसी समय, उस जहाज का केबिन क्रू, अधेड़ उम्र का एक स्वस्थ फिनिस नागरिक वहाँ से गुजर रहा था. फिनलैण्ड के प्रख्यात हवाई अड्डे 'हेलसिनकी' से वह विमान में मेरे साथ था. मुझे परेशान देखकर उसने मुझे मेरी समस्या पूछी, मैंने जल्दी-जल्दी दो वाक्यों में अपनी समस्या बताकर उससे खुल्ले माँगने की कोशिश की. बाद में पता चला कि उस भले मानस की अलग ही समस्या थी. उनके देश में यूरो चलता है, वे यूरो रखे हुए थे, अब डॉलर को यूरो में अनूदित (परिवर्तित) करना उनके वश में नहीं था. उन्होंने बगैर दो पल जाया किए अपना क्रेडिट

कार्ड निकाला, उस डब्बे में घुसाया और मुझे ट्राली ले जाने को कहा. उनकी उच्चारण शैली से, उनकी आंगिक चेष्टा से, मैं उनकी धारणा समझ नहीं सका. फिनिश और अमेरिकी नागरिकों की बॉडी-लैंग्वेज और चेहरे की भावाभिव्यक्ति के कारण यह समस्या आगे के प्रवास में और भी हुई, मगर उसका जिक्र बाद में... तो मैं फिर निराश खड़ा रहा. उस भले मानस को समझ में शायद यह बात आ गई कि मैं उनकी बात नहीं समझ सका. वह फिर लौटा और उस कतार में से एक ट्रॉली खींचकर मुझे पकड़ा दी और चलता बना. मैं भी जल्दी में था. ट्रॉली लेकर वापस आया, उस घूमते चक्के के किनारे अपने सामान के गिरने की प्रतीक्षा करने लगा. सामान मिला. ट्राली पर उसे लाद लेने के बाद उस भले मानुष को खोजने लगा. यहाँ-वहाँ नजर दौड़ाई. उस बड़ी लॉबी के एक कोने में फिन-एयरवेज के यूनीफार्म में कई केबिन क्रू को देखा. कुछ उम्मीद से उधर ही बढ़ा जा रहा था कि अचानक वह भला मानुष अपनी पहियावाली अटैची लुढ़काते हुआ जाते दिखा. तेज कदमों से उसकी ओर बढ़ते हुए उसके नजदीक जाकर मैंने कहा—एक्स्क्यूज मी! उसने पलटकर देखा और बिफर पड़ा— नाउ, व्हाट प्रोब्लेम यू हैव? उसे लगा कि मैं शायद कुछ और अपेक्षा करता हूँ. उसका गुस्सा देखकर मैं सकते में आ गया था. फिर उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और निवेदन किया कि वे उस राशि

की वापसी ले लें. पर उन्होंने– 'डोन्ट वरी' कहा और धन्यवाद की प्रतीक्षा किए बगैर चल पड़ा. मैं देखता रह गया. अमेरिका की भावनाविहीन और विज्ञान परस्त धरती पर मेरा पहला स्वागत एक गैर-अमेरिकी नागरिक द्वारा इसी तरह हुआ.

मैनहट्टन टापू पर बसा, तीन तरफ से हडसन नदी के पानी से घिरा न्यूयार्क सिटी के जॉन एफ कैनेडी हवाई अड्डा पर मैं उतरा था और वहीं से भारत वापसी हेतु मैंने अमेरिका की धरती छोड़ी. कुल मिलाकर १८ दिनों तक साम्राज्यवादियों की उस धरती और उस वातावरण में रहा. ऑफिशियली मैं अमेरिका का अभ्यागत तो था नहीं. अमेरिका जैसे देश और वहाँ की व्यवस्था के लिए कोई अभ्यागत हो भी नहीं सकता. यह बात बहुतों को बुरी लग सकती है पर अमेरिकी दूतावास जिस तरह से इन दिनों लोगों को वीसा दे रहा है, उस प्रक्रिया से गुजरकर कोई भी स्वाभिमानी यही सोचेगा.

विदेश मन्त्रालय द्वारा आयोजित आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में गया था. वहाँ के भारतीय दूतावास और हिन्दी भवन के लोगों पर यह जिम्मेदारी थी कि आने वाले अतिथियों का वे स्वागत करें. बाइस-चौबीस घण्टों की हवाई यात्रा कर ठिकाने पर पहुँचने के बाद जिस व्यवस्थित व्यवस्था की उम्मीद लगा कर गया था, वैसा कुछ देखने को नहीं मिला. मगर उसे यह सोचकर भूल गया कि इतने बड़े आयोजन की कुछ मजबूरियाँ और कुछ सीमाएँ होनी चाहिए, वह थी. इस विश्व हिन्दी सम्मेलन के विरुद्ध विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है. कुछ ऐसे विद्वानों ने भी लिखा है, जिन्हें इस जश्न का कर्ता-धर्ता होने की जुगत इस बार नहीं बैठ सकी; कुछ ऐसे लोगों ने भी लिखा है, जो खुद इस जश्न का हिस्सा बनकर लौटे हैं. मैं उस पूरे आयोजन में और वहाँ से वापस लौटकर भी लगातार यह सोचता रहा हूँ कि ये लोग किसका विरोध कर रहे हैं? आयोजन का, आयोजन की पद्धति का, हिन्दी का या आयोजन समिति के लोगों का? जवाब कुछ नहीं मिल पा रहा है. हर कोई चोट खाए साँप की तरह अपने ही शरीर में दाँत काट कर अपने ही जहर से मर जाना चाहते हैं. हिन्दी भाषा के नाम पर कितनी तरह की दुकानदारी इन दिनों चल रही है, इस बात से वे सारे विद्वान परिचित हैं. इस घोषित सत्य से, हिन्दी के कौन-से व्यापारी सुपरिचित नहीं हैं कि ऐसे आयोजनों में स्वतः अथवा प्रयासपूर्वक शामिल हो जाने वाले लोगों में से तीन चौथाई से अधिक लोगों का प्राथमिक उद्देश्य हिन्दी अथवा हिन्दी का सम्वर्द्धन नहीं रहता? सारे लोग जानते हैं. हिन्दी की दुनियाँ को इसी कीचड़ उछाल पद्धति और अनावश्यक अहं के कारण व्यवस्था में शामिल लोगों तक हिन्दी भाषा और साहित्य की ध्वनि नहीं पहुँच पाती है. भाँड़-भड़ैती की बातें करने जैसी कविताएँ(?) और चुटकुले पहुँचते हैं, और निरन्तर जनरुचि में गिरावट आती जा रही है. संगोष्ठियों, परिसम्वादों के दौरान अथवा कवि गोष्ठी के दौरान वहाँ क्या कुछ हो पाया, इसकी रपटें बहुत छप चुकीं. बान की मून ने सभी को 'नमस्कार' और 'कैसे हैं आप' कहा... सभी हिन्दी-भाषी धन्य हो गए. मगर अमेरिका में रह रहे भारतीय नागरिक का जायजा लेना अधिक दिलचस्प होगा.

> हर कोई चोट खाए साँप की तरह अपने ही शरीर में दाँत काट कर अपने ही जहर से मर जाना चाहते हैं. हिन्दी भाषा के नाम पर कितनी तरह की दुकानदारी इन दिनों चल रही है, इस बात से वे सारे विद्वान परिचित हैं.

आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन संयुक्त राज्य अमेरिका के अत्यन्त व्यस्त, चर्चित और खूबसूरत शहर न्यूयॉर्क में हुआ. इस अवसर पर नेशनल बुक ट्रस्ट को हिन्दी के श्रेष्ठ प्रकाशनों की प्रदर्शनी लगाने की नोडल एजेन्सी बनाया गया था. पूरे देश के प्रकाशकों द्वारा ट्रस्ट में भेजी गई हिन्दी पुस्तकों में से ४०० से अधिक श्रेष्ठ पुस्तकों का चयन ट्रस्ट द्वारा मनोनीत एक चयन समिति द्वारा करवाया गया और उन सभी पुस्तकों की मुद्रित सूची पूरे विवरण के साथ तैयार कर उन पुस्तकों की प्रदर्शनी लगाई गई. इस प्रदर्शनी की जिम्मेदारी देकर उक्त सम्मेलन में ट्रस्ट की ओर से भागीदारी देने के लिए मुझे मनोनीत किया गया था.

पुस्तक प्रदर्शनी में लगभग बीस महत्त्वपूर्ण हिन्दी प्रकाशकों की चुनी हुई पुस्तकों के अलावा वाणी प्रकाशन, साहित्य अकादेमी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, डाइमण्ड पॉकेट बुक्स, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, राजभाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., प्रकाशन विभाग, प्रेमचन्द शोध संस्थान आदि द्वारा प्रकाशित पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ प्रदर्शनी हेतु लगी थीं. सभी के पुस्तकों की सूचियाँ एवं अन्य प्रचार सामग्री निःशुल्क वितरण हेतु उपलब्ध थीं.

प्रदर्शनी के दौरान हिन्दी पुस्तकों के प्रति पाठकों का रुझान दिलचस्प था. वे प्रदर्शित पुस्तकें किसी भी कीमत पर खरीदना चाहते थे. मगर यह बात भ्रामक लगी कि इतने आतुर क्रेता और पाठक जहाँ हों वहाँ कोई पुस्तक व्यवसायी आगे क्यों नहीं आए खासकर व्यापार और विनिमय के क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे उन्नत देश में, जहाँ दूसरे देश के नागरिक भी आकर उन्नत कोटि के वाणिज्य में उद्यमी हो जाते हैं. संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस मामले में अपनी महत्ता तो साबित कर रखी है कि यहाँ मॉल में स्थित पुस्तक विक्रय केन्द्र, अन्य किसी प्रसाधन सामग्री के विक्रय केन्द्र से छोटा और उदास नहीं होता. कोटि विभाजन कर इस मॉल में तरह-तरह की पुस्तकें बिक्री हेतु लगी रहती हैं और केन्द्र का एक कोना क्रेताओं के लिए सुविधा सम्पन्न बना रहता है कि

वहाँ बैठकर पाठक तसल्ली से पुस्तकें पसन्द करें, चुनें और तब खरीदें.

प्रदर्शनी में आते तो सब थे, खरीदने को इच्छुक सब थे, मगर सबसे अधिक व्यग्र वहाँ की भारतीय महिलाएँ दिखती थीं और उनकी ललक सुविख्यात लेखकों की हिन्दी पुस्तकें (प्रेमचन्द, निराला, प्रसाद, पन्त, महादेवी, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, कमलेश्वर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, शरत् चन्द्र, बंकिम चन्द्र), महिला रचनाकारों की पुस्तकें (कृष्णा सोबती, महाश्वेता देवी, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्‌गल, आशापूर्णा देवी) और बाल साहित्य तथा जीवनी साहित्य के प्रति अधिक दिखती थी. यह भारतीय ललनाओं की बुद्धिमता और उन्नत जीवन शैली का परिचय ही था. पुस्तक नहीं खरीद पाने के कारण बहुत उदास होकर, मगर बड़ी आतुरता से वे सब पुस्तकें उपलब्ध करने के तरीके जानकर वापस जाते थे. आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान अमेरिकी राज्यों और यूरोपीय देशों से आए हिन्दी प्रेमियों के मन में पहले से पल रहे पुस्तक प्रेम को इस प्रदर्शनी ने इतना कुरेदा, यह इस प्रदर्शनी की महान सफलता मानी जानी चाहिए.

यह आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन था. हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ में कामकाज की भाषा के रूप में मान्यता दिलाने हेतु रणनीति तैयार करना, उस ओर अग्रसर होना चाहिए और अग्रेतर स्थिति बना लेना इस आयोजन का मुख्य लक्ष्य था, जिसमें बहुत हद तक सफलता दिखी. मगर विचार करने लायक बात यह है कि इस पूरे अनुष्ठान के आनुषंगिक उपक्रम के रूप में जिनको जो जिम्मेदारी दी गई, उन्होंने उस उपक्रम का क्या हश्र कर दिया. आयोजन में विचार का विषय-विमर्श और वक्त तथा कवि-दरबार तय करने की जिम्मेदारी जिन्हें दी गई, उनका लक्ष्य क्या था? उन्होंने अपने इन करतबों से हिन्दी अथवा हिन्दी सेवियों, हिन्दी जीवियों, हिन्दी भोगियों, हिन्दी जोगियों का कितना उद्धार कर दिया. या फिर, इस अनष्ठान के कर्ता-धर्ता न हो पाने की व्यथा में लोगों ने जितना कुछ हंगामा मचाया, उनका उद्देश्य कितना सार्थक था–यह भी विचारणीय नहीं है.

यह तो अनुभव किया गया कि अमेरिका में जीवन-बसर कर रहे नागरिकों के लिए हिन्दी से सम्बन्धित यह अनुष्ठान उत्सवधर्मा अवश्य साबित हुआ. उनके लिए हिन्दी की राजनीति और रणनीति किसी अर्थ में प्रासंगिक नहीं था. उनके लिए यह सुखकर था कि हिन्दी के नाम पर कुछ हो रहा है, उन्हें हिन्दी सुनने को मिल रहा है. कविता के नाम पर चुटकले और विचार-विमर्श के नाम पर प्रवचन भले ही हो, कुछ देर के लिए हिन्दी सुनना उनके लिए सुखकर साबित हो रहा था. प्रदर्शनी में प्रदर्शित अच्छी-अच्छी पुस्तकें मुँहमाँगी कीमत पर खरीदने को लालयित वहाँ रह रही भारतीय ललनाएँ खरीद नहीं पाईं. क्योंकि पुस्तकें वहाँ बिक्री हेतु नहीं थीं, केवल प्रदर्शन हेतु थीं. अन्त में उन्हें मुफ्त वितरण की पत्रिकाएँ और प्रचार सामग्री जो भी मिल सकीं–उसे समेट कर वे कृतार्थ होती गईं. क्या यह बेहतर नहीं होता कि आयोजन समिति अपने स्थानीय समर्थकों के सहयोग से अमेरिका के इन हिन्दी अनुरागियों की कामनाएँ पहले से जानकर उनके अनुकूल कुछ करते. कविता की ही बात हो, तो हिन्दी कविता की अद्यतन उपलब्धियों से लोगों का परिचय कराते. बहरहाल हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता. पूरा परिदृश्य यही है. भारत से लेकर देशान्तर तक नजर डालने पर यही तथ्य सामने आ रहा है कि आत्मप्रचार, आत्मस्थापन, आत्मसुख और आत्मोत्थान में लिप्त लोगों की वजह से शायद हरेक अनुष्ठान अपने रास्ते से भटक जाता है, इस भटकाव में भी अनुष्ठान के मूलभाव का असर जैसे-तैसे यदि लक्ष्य की ओर चला जा रहा है, तो वह हिन्दी की अपनी सहज वृत्ति के कारण.

> *उनके लिए यह सुखकर था कि हिन्दी के नाम पर कुछ हो रहा है, उन्हें हिन्दी सुनने को मिल रहा है. कविता के नाम पर चुटकले और विचार-विमर्श के नाम पर प्रवचन भले ही हो, कुछ देर के लिए हिन्दी सुनना उनके लिए सुखकर साबित हो रहा था.*

एक और पक्ष विचारणीय है– आम तौर पर जिलान्तर में लोग अपने जिले के लोगों से, प्रान्तेतर में अपने प्रान्त के लोगों से और देशान्तर में अपने देश के लोगों से अनुराग भाव से मिलते हैं, अमेरिका में ऐसा अनुभव किया जा सकता है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र के जो भारतीय नागरिक अमेरिका में रहकर जीवन बसर कर रहे हैं, उनमें पुरुषों का स्वभाव भारतीयों के बारे में बहुत ही अवमानना भरा है. उनके मन में इस बात का थोड़ा-सा भी अनुराग नहीं दिखा कि 'यह आदमी मेरे देश से आया है.' वह अपने को इतना ऊँचा और सुसभ्य मान रहा था कि उसकी नजर में सभी भारतीय लोगों में स्वदेशी नागरिकों के प्रति सम्मान और अनुराग अवश्य दिखता था. इस अर्थ में कहा जा सकता है कि अमेरिका में रह रहे दक्षिण भारतीय नागरिकों और भारतीय स्त्रियों के मन में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम बचा हुआ है, जबकि हिन्दी भाषी क्षेत्र के पुरुष अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान खो चुके हैं. क्योंकि स्वदेशी भाषा और स्वदेशी के प्रति उपेक्षा भाव रखने वाले की राष्ट्रीय निष्ठा शंका मुक्त नहीं हो सकती. अपवाद हर स्थिति में होती है.

इसके ठीक विपरीत अमेरिकी नागरिक का सोच इतना सकारात्मक और धनात्मक लगा कि उनके मन में यह धोखा से भी नहीं आता कि 'यह भारतीय हमारे राष्ट्र में आकर धन कमा रहा है और सम्पन्न हो रहा है.' वह हर वक्त यह सोचता है कि यह व्यक्ति हमारे देश में काम कर रहा है और इसके काम का परिणाम हमारे देश को मिल रहा है. इस कारण उससे अमेरिका में रह रहे भारतीयों को सामान्य स्थितियों में अमेरिकियों से बैर भाव नहीं होता. हाँ, बहुत ऊँचाई पर चले जाने पर

उपलब्धि में कुछ प्रतिस्पर्धा की स्थिति अवश्य आती है. इस हाल में यह भी गौरतलब है कि कर्मचारी वर्ग से लेकर वैज्ञानिक वर्ग और अभियन्ता वर्ग तक के लिए अमेरिकियों की यह धारणा है कि एक चीनी को यहाँ किसी काम का दायित्व दिया जाए तो किसी तरह पूरा आवण्टित समय खपाकर उस काम को पूरा कर पाता है, मगर वही काम किसी भारतीय को दिया जाता तो तेज गति से अपने उस दायित्व को निपटा कर अपने नए दायित्व की नई दिशा ढूँढकर सामने रख देता है. निश्चय ही यह आचरण प्रशंसनीय है और निष्ठा के क्षेत्र में भारत का मस्तक ऊँचा करता है.

अमेरिका में रह रहे भारतीय नागरिक और अमेरिका की नागरिकता प्राप्त कर लिए भारतीयों के काम-काज, जीवन-बसर और मनःव्यवस्था के सम्बन्ध में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है. वरिष्ठ नागरिक हो गए लोगों का अपने सन्ततियों के साथ व्यवहार, किशोर और तुरत-तुरत जवान हुए बाल-बच्चों के माता-पिताओं की चिन्ता और निश्चिन्तता, अमेरिकी माहौल में पले-बढ़े युवाओं का विवाह भारत आकर भारतीय जीवन-व्यवस्था में शिक्षित-दीक्षित युवाओं से करवाकर अमेरिका लौटने पर पनपी समस्याओं से जूझने की मनोदशा. ये सब कुछ गम्भीर मसले हैं, जिन पर अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है. मगर पहले अमेरिकी जीवन-व्यवस्था पर एक नजर डालें.

अपने मित्र नरेन्द्र जी को देखा, मकान खरीदने के लिए कर्ज लेना था, कर्ज मुहैया करने वाली एजेन्सी को उन्होंने फोन किया, उसने इनका आइडेण्टटी नम्बर पूछा, उनका सारा आँकड़ा उसके सामने कम्प्यूटर में तैयार मिला. बगैर किसी मशक्कत के कर्ज की वांछित राशि उनके खाते में पहुँच गई. भारत होता तो उस कर्ज के लिए उन्हें कितने पापड़ बेलने पड़ते. यह बात तो किसी से छिपी नहीं है कि मोनिका लेवेन्सकी को लेकर अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन को क्या-क्या भोगना पड़ा और यह भी किसी से छिपा नहीं है कि भारत के एम.एल.ए., एम.पी., मन्त्री, सन्तरी ऐसी कितनी स्त्रियों को चूँ-चपड़ तक करने का अवसर नहीं देते. जरा-सी खड़-बड़ हो तो उसे आनन-फानन में निपटा देते हैं. अमेरिका की प्रख्यात अभिनेत्री ने शराब पीकर गाड़ी चलाई, तो उसे जेल जाना पड़ा, भारत में दस-बीस की जानें लेकर भी लोग आराम से जी सकते हैं. गरज यह कि जिस अमेरिका की चाल-चलन पर हमारे यहाँ के बुद्धिजीवी अभद्र ही सोचते रहते हैं, उसी अमेरिका की धरती, अमेरिकी नागरिक, अमेरिकी सुख सुविधा और अमेरिकी मुद्रा का संस्पर्श पाने को लालयित भी रहते हैं. हमारे यहाँ के बुद्धिजीवियों का यह द्वैत उन्हें चैन नहीं लेने देता. उधर अमेरिकी नागरिक निरन्तर अपने उत्थान में व्यस्त रहते हैं, अपनी कमाई खाकर अपने विकास के चिन्तन में लीन रहते हैं, दूसरों के पतन के लिए व्यग्र नहीं रहते.

> *अमेरिकी नागरिक निरन्तर अपने उत्थान में व्यस्त रहते हैं, अपनी कमाई खाकर अपने विकास के चिन्तन में लीन रहते हैं, दूसरों के पतन के लिए व्यग्र नहीं रहते.*

एक मॉल में देखा, मेडिकल कोर्स कर रही एक युवती कॉलेज में छुट्टी होने की वजह से समय की आफियत में रहती थी. उसने वहाँ पार्ट टाइम जॉब शुरू कर दिया था. चार घण्टे के लिए उस मॉल में आती थी. मकानों में पर्दा टाँगने वाली पाइप की कटिंग करती थी. कोलम्बिया (साउथ कैरोलिना) में मकान बनाने वाली एक कम्पनी के प्रबन्ध निदेशक की निजी सहायिका का काम कर रही जेसिका पॉलिटिकल साइन्स से ग्रेजुएशन कर रही है, उसका लक्ष्य है अध्यापन, वह पोस्ट ग्रेजुएशन करेगी और अध्यापिका बनेगी. माँ-पिता से अलग रहती है. दिन में इस मुंगो कम्पनी की नौकरी कर ले रही है और रात में पढ़ाई करती है. ग्रेजुएशन कर रही या एम.बी.बी.एस. कर रही किसी युवती, युवक से इस आचरण की कल्पना भारत में नहीं की जा सकती. काम और पद के आधार पर मनुष्य को ओछा और बड़ा समझने की पद्धति वहाँ नहीं दिखी, वहाँ मनुष्य ओछा या बड़ा अपने विचार और आचरण से समझा जाता है. व्यवस्था ने वहाँ जो नियमावली बनाई है, उसका पालन होता है, उसके उल्लंघन का दण्ड सबके लिए समान है. विधि विरुद्ध दिशा में जाने पर हर व्यक्ति को वैधानिक दण्ड का भागी होना पड़ता है. भारत की तरह मुँहदेखी दण्ड-व्यवस्था वहाँ नहीं है. सड़क पर गाड़ी पार्क करने अथवा गाड़ियों की गतिसीमा विधि सम्मत रखने अथवा अपनी लेन में गाड़ी चलाने के अभ्यस्त अमेरिकी नागरिक जब भारत के दिल्ली जैसे महानगर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक रूप से सावधान शहर में गाड़ी चलाएँगे, तो उन्हें एक यात्रा में कितनी बार बसों के नीचे आ जाना पड़ेगा, इसका अनुमान 'विधाता' भी नहीं कर सकेंगे. मुझे लगता है कि यह सारा कुछ वहाँ के सकारात्मक सोच के कारण सम्भव हो पाता है. 'जीओ और जीने दो' के विचार के कारण; हमारे यहाँ तो लोग केवल 'जीओ' जानते हैं, भले ही 'औरों को कुचल देना पड़े.'

मगर ऐसा भी नहीं है कि हमारा सब कुछ बदतर है, उनका सब कुछ बेहतर है. उस मामले में कहें, तो हमारा बहुत कुछ बेहतर, हमें केवल सुधरने की आवश्यकता है. हर क्षेत्र की मिट्टी और वनस्पति वहाँ के मानवीय स्वभाव का प्रमाण देती है. इस मामले में पर्याप्त हरीतिमा से भरे रहने के बावजूद वहाँ की मिट्टी और वनस्पति को जब छुआ, तो उसमें वह मुलायमियत नहीं थी जो हमारे यहाँ हैं. सम्भवतः यह रूखापन और अक्खड़ता ही वहाँ के लोगों को इस तरह सम्वेदनहीन बनाता है.■

नीलम कुलश्रेष्ठ

१३ जून १९५२ को आगरा में जन्म. रसायन विज्ञान में एम.एस.सी., डिप्लोमा इन एक्सपोर्ट मार्केटिंग. स्वतंत्र लेखन व पत्रकारिता, विज्ञान, इतिहास, आर्किटेक्चर, आर्किओलौजी, चित्रकला, मूर्तिकला पर लेखन. 'हरा भरा रहे पृथ्वी का पर्यावरण', 'ज़िंदगी की तनी डोर : ये स्त्रियाँ' व अन्य पुस्तकें पुस्तकें प्रकाशित. कहानी संग्रह 'हेवनली हेल' को अखिल भारतीय अम्बिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्राप्त. सम्प्रति - बड़ोदरा व अहमदाबाद में बहुभाषी महिला साहित्यिक मंच 'अस्मिता' की स्थापना व उपाध्यक्ष.

सम्पर्क : kneeli@rediffmail.com

खोज-खबर

अपराधी जगत में अहिंसा की दस्तक

मेक्सिको देश की अंदरूनी तस्वीर — ड्रग माफिया व पुलिस कर्मचारियों की मिलीभगत के पंजे में जकड़ा समाज. पंद्रह या बीस वर्षों से या उससे भी पहले ट्रेफिक कर दी गईं लड़कियों के माँ-बाप के जर्जर, निढाल झुर्री पड़े इंतजार करते बूढ़े चेहरे. ड्रग के नशे में कत्ल करते, लूटपाट करते युवा. सड़क पर मिलती देशी व विदेशी पत्रकारों की लाशे. कहीं पूरा सच सामने न आ जाये, कहीं वे चेहरे बेनकाब न हो जाएँ. इन सब झलकियों को कभी किसी टीवी चैनल पर देखकर या अख़बारों में देखकर दिल दहल जाता था. जहाँ कोई कानूनी व्यवस्था नहीं है कैसा होगा वो नृशंस देश मेक्सिको?

धन ने मेक्सिको की सामाजिक संरचना ऐसी कर दी है कि वहां अधिकतर युवा अपराधी या बदमाश बनना चाहता हैं यानि वहां अपराधी होना एक लोकप्रिय कैरियर है. मेक्सिको में ड्रग माफिया का इतना बड़ा आतंक क्यों है? अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ के गाँधीवादी अध्ययन विभाग के प्रोफ़ेसर श्री एम.पी. मथाई जो कि डेल्ही के गाँधी पीस फाउन्डेशन की पत्रिका 'गाँधी मार्ग' (अंग्रेजी) के संपादक भी हैं का उत्तर देते हुए बताते हैं कि सबसे बड़ा कारण है यहाँ के ८५ प्र.श. युवाओं का बेरोजगार होना. ये अमेरिका का तटवर्ती देश है जिसकी बहुत बड़ी सीमा अमेरिका के कोलंबिया से सटी हुई है. अमेरिका जैसे धनी देश में आसानी से ड्रग तस्कर कर दी जाती है. इस तस्करी के लिए अपराधियों को युवाओं की आवश्यकता होती है. अपराधी युवाओं के गेंग में गेंगवार चलती रहती है. 'सर्वाइवल ऑफ़ फिटेस्ट' के आधार पर जो जीततें हैं ड्रग माफिया उन्हें चुन लेते हैं.

किसी समाज का इससे बड़ा क्या दुर्भाग्य होगा कि उसके युवा सिर्फ तीन चार साल पैसा कमाते हैं व इन गैंगवार में ८० प्र.श. युवा मारे जाते हैं, जो बचे रहते हैं वे ड्रग्स का घिनौना व्यापार करते हैं. ऐसे समाज की कल्पना करके रूह काँप जाती है जहाँ सूनी माँग लिए विधवाएं अधिक हों, लड़कियां या तो हों ही नहीं या हों तो वे अपने सुरक्षा के लिए भाई के लिए तरसतीं हों, माँओं की आँखे हर समय टपकती रहतीं हों. जिनका बेटा मर गया हो, बेटी को कब कौन उठा ले गया हो पता ही नहीं. वह किस कोने में ड्रग के नशे में मजबूरन देह व्यापार कर रही होगी पता नहीं.

जिस देश का युवा वर्ग अपराधी बनने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहा हो, जिसे कत्ल, लड़कियों को अगवा करने से या ड्रग माफिया के लिए कम करने से कोई परहेज़ नहीं हो, वहां एक चमत्कार होता है. वहां के ४५० युवाओं का हृदय परिवर्तन होता है. वे अपराध जगत छोड़कर गाँधीजी के अहिंसा के शपथ पात्र पर हस्ताक्षर करते हैं, विश्वास नहीं होता, लेकिन मेक्सिको में ऐसा हुआ है.

हर चमत्कार एक दिन में नहीं होता. हुआ कुछ इस तरह से था सन २००७ में मेक्सिको के मोंट्रे शहर के एक उद्योगपति फर्नेदो फेरेरा रिवेरो, जो कि अपने यहाँ के टाटा, बिरला के समकक्ष हैं, भारत अपनी अध्यात्मिक यात्रा के लिए नौ महीने के लिए आये थे. यहाँ उन्होंने संस्कृत सीखना आरम्भ किया, वर्धा के सेवाग्राम आश्रम में गए. केरल में प्रोफ़ेसर मथाई से मिले, जिन्होंने अपना केरियर एक अंग्रेजी के प्राध्यापक के रूप में आरम्भ किया था लेकिन उनका जीवन गाँधी जी की विचारधारा व आदर्शों के लिए समर्पित होता गया.

वे बतातें हैं, 'मुझे उनसे मिलकर पता लगा कि वे बहुत गंभीर व ईमानदार व्यक्ति हैं जिन्हें अपने देश के वातावरण को देखकर बहुत तकलीफ व क्षोभ होता है. वे वहाँ के लोगों को हिंसा व अपराध के आतंक से मुक्त कर शांति की स्थापना करना चाहते हैं. उनके निमंत्रण पर मैं २००७ में तीन-चार बार मेक्सिको गया. मैंने वहाँ देखा कि कुछ लोगों ने एनजीओ बना रक्खी हैं, कुछ स्त्री

संस्थाएं बदमाशों की शिकार महिलाओं के पुनर्वास व ग्रामीण स्वास्थ्य पर कार्य कर रही हैं. फर्नेदो के प्रयास से मैं ऐसी ही संस्थाओं के लोगों से मिला व चार-पांच विश्व विद्यालय में भाषण भी दिए. जो देश अपराधियों के चंगुल में हो वहाँ एकदम से अहिंसा की बात नहीं की जा सकती इसलिए मैंने वहाँ की एनजीओ से अपील की कि वे एक कॉमन फोरम बनायें.

इस तरह सबके प्रयास से 'मेसा द पॉज़' अर्थात सब तरफ शांति, फोरम का गठन किया गया. इस फोरम में एक अन्तराल के बाद सब लोग मिलकर अपने अनुभव, अपनी समस्याएं, अपने काम करने के रास्ते के बारे में चर्चा करने लगे. इस फोरम पर लोगों का मिलना-जुलना एक वर्ष तक चलता रहा और चलती रही चर्चा, परिचर्चा. सबको लगने लगा हर समस्या ड्रग माफिया व पुलिस कप्स के अपराधों के आतंक की जड़ तक ही पहुंचती है. वहाँ के लोग ऐसे भयानक माहौल से कितने घबरा गए होंगे क्योंकि एक वर्ष में मौन्तरे शहर में 'मेसा द पॉज़' की सदस्य संख्या ४०००० हो गयी थी. एक वर्ष तक इस संगठन का यही प्रयास रहा कि इसके सदस्य हिंसा छोड़कर शांतिप्रिय बनें. इनके लिए विशेष रूप से गाँधीवादी शिक्षा के कार्यक्रम चलाये गए थे.

जब वहाँ शांति का माहौल बन गया तो मथाई जी ने प्रेरणा दी कि हिंसा का प्रतिकार अहिंसा ही है. इसलिए सभी ने मिल जुलकर हिंसा के विरुद्ध काम करने का निर्णय लिया व सबसे पहले ड्रग पेदलर्स के नवजागरण का काम आरम्भ किया. उनके लिए सदभावना शिविर चलाये गए. श्री मथाई बताते हैं कि 'मेसा द पॉज़' के यूथ विंग को नाम दिया 'उनो उनो पॉज़', मेक्सिकन भाषा में 'उनो' का अर्थ है 'गियर' अर्थात हम इस नाम को 'शांति के दूत' के रूप में ले सकते हैं. यहाँ राजनीति न हावी हो इसलिए कोई कार्यकारी समिति नहीं बनायीं गयी बल्कि कुछ लोगों के गियर्स या दल बनाये गए जिनकी रुचियाँ व विशेष ज्ञान एक सामान हों.

प्रिंट मीडिया में रुचि रखने वाले उनो उनो पॉज़ के लोग एक सचित्र न्यूज़ लेटर की २०,००० प्रतियां प्रकाशित करके अहिंसा व शांति सन्देश वितरित करते हैं. बीस सदस्य तो स्वयं एक हज़ार प्रतियाँ लोगों तक पहुंचाते हैं. इनमें से दिशा निदेशन व लेखन का काम अधिकतर पुनर्वासित गेंगस्टर करते हैं.

दूसरा गियर कलाकारों व ग्राफिक्स आर्टिस्ट का है. जो आपने शरीर पर टैटू बनवा कर, दीवारों पर पोस्टर चिपका कर, सड़कों पर बैनर लगा कर अहिंसा का सन्देश दे रहे हैं कि अपने देश को कैसे हिंसा व अपराध मुक्त किया जा सकता है.

> अब वहां के लोग बहुत खुश हैं कि उनके युवा घर के आधे रास्ते तक आ चुके हैं. वे घर लौटना चाहते हैं. वहाँ गाँधी साहित्य की मांग बढ़ गई है. वहाँ के लोगों ने एक गाँधी समिति बना ली है.

तीसरा गियर किशोरों के पुनर्वास के लिए काम करता है जो बाल अपराधी गृह से बाहर आते हैं जिनके अभिभावक उन्हें घर में नहीं रखना चाहते. यदि वे सड़क पर रहेंगे तो फिर अपराधियों के हत्थे चढ़कर अपराध करेंगे इसलिए इस तीसरे गियर ने इनके लिए 'हाफ वे हॉउस' का निर्माण कर दिया है.

चौथा गियर भी बहुत महत्वपूर्ण काम कर रहा है. वह गैंग्स के बीच में सुलह करवाने का काम कर रहा है. श्री मथाई बतातें हैं कि जब मैं सन २००७ में मौन्तरे गया था तो वहाँ पर एक दिन में चार पांच कत्ल होना आम बात थी. एक दिन तो छह लोगों का कत्ल करके आधी रात को उनकी लाशें उनके घर के सामने डाल दी गई थी. मुझे ये बताते हुए ख़ुशी होती है कि इन चार वर्षों में वहां युवाओं व किशोरों की सुरक्षा बड़ी है.

उनो उनो पॉज़ के चौथे गियर ने प्रोफ़ेसर मथाई को जुलाई २०११ में बुलाया था. उन्होंने एक बड़े हॉल में एक आयोजन किया जिसमें वहां के ४५० गैंगस्टर्स अपराध जगत को अलविदा कहना चाहते थे. श्री मथाई बताते हैं कि मैं गाँधी जी के चमत्कार को देखकर चकित था कि मेरे सामने खड़े ४५० युवा नशीली दवाओं के घिनौने रास्ते व जघन्य अपराध को छोड़ना चाह रहे थे. वे सभी शांतिप्रिय रास्ते पर चलना चाह रहे थे. उन्होंने ऐसे ही शपथ-पत्र पर मेरे सामने हस्ताक्षर किये. मैंने आपने अभिभाषण में यही कहा कि आपने एक कागज़ के टुकड़े पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं बल्कि आपने महान देश की अंतर्चेतना पर हस्ताक्षर किये हैं. आप अलग-अलग गैंग में काम करते थे लेकिन आज से एक ही परिवार के सदस्य हैं. अहिंसा को अपनाने की ख़ुशी में इन लोगों ने बाद में बहुत जोर-शोर से डांस किया.

गाँधी जी के बताये रास्ते का ही चमत्कार था कि केन्द्रीय सरकार ने अपने कुछ अधिकारियों को इस कार्यक्रम को समझने के लिए भेजा था.

कुछ उद्योगपति इन लोगों को नौकरी देने के लिए आगे आये हैं व उनमें से कुछ ने घोषणा की है कि जो लोग उनो उनो पॉज़ के फुलटाइम कार्यकर्ता हैं उन्हें वे प्रति माह सैलेरी देंगे जिससे उनका घर चल सके.

अब वहां के लोग बहुत खुश हैं कि उनके युवा घर के आधे रास्ते तक आ चुके हैं. वे घर लौटना चाहते हैं. वहाँ गाँधी साहित्य की मांग बढ़ गई है. वहाँ के लोगों ने एक गाँधी समिति बना ली है. इस प्रकार मेक्सिको के नौजवान अपराध के हैवानियत भरे अंधकारमय रास्ते पर भटकने के बाद एक प्रकाश पुंज के मुहाने पर आ खड़े हुए हैं.■

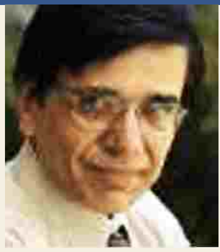

डॉ. राघबेन्द्र झा

सेंट स्टीफन कॉलेज से बी.ए. (ऑनर्स) और दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स से एम.ए. किया. उन्होंने कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क से अर्थशास्त्र में एम.फिल और पीएच.डी. की डिग्रियाँ हासिल कीं. ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी आने के पहले आपने अमेरिका में कोलंबिया यूनिवर्सिटी और विलियम्स कॉलेज में अर्थशास्त्र के अलावा कनाडा में क्वीन यूनिवर्सिटी और इंग्लैंड वारविक यूनिवर्सिटी में भी पढ़ाया है. भारत में उन्होंने दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स, आई.आई.एम. बेंगलौर और इंदिरा गाँधी आर्थिक विकास संस्थान में भी पढ़ाया है. उन्होंने २७ पुस्तकों को लिखा और सम्पादन किया है. अर्थशास्त्र के विशिष्ट अंतरराष्ट्रीय जर्नलों में १५० से अधिक वैज्ञानिक लेखों का योगदान किया. दुनिया के कई अखबारों में उनके लेख छप चुके हैं और उन्हें अर्थशास्त्र के कई सम्मान प्राप्त हुए हैं. सम्प्रति - ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, कैनबरा, ऑस्ट्रेलिया में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर और वहाँ के ऑस्ट्रेलिया साउथ एशिया रिसर्च सेंटर के एक्ज्युकेटिव डायरेक्टर हैं. सम्पर्क : r.jha@anu.edu.au

तथ्य

राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना - एक मूल्यांकन

ये चीज़ें हमारा विनाश कर देंगी : सिद्धान्तहीन राजनीति, विवेकहीन विलासिता, श्रम बिना अर्जित सम्पति, चरित्र के बिना ज्ञान, नैतिकता विहीन व्यापार, मानवता बिना विज्ञान और दान बिना पूजा.

- महात्मा गाँधी

दो हजार पाँच में राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना (अबसे NREGS) के लागू होते ही उसे भारत में गरीबी समाप्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बताया गया. यह कानून ग्रामीण इलाके में किसी भी परिवार के एक सदस्य को एक वर्ष में १०० दिनों का रोज़गार नयूनतम दैनिक मजदूरी पर दिलाने की गारंटी देता है. रोज़गार की सुरक्षा के साथ ग्रामीण विकास का यह कार्यक्रम अगर ठीक से लागू किया जाये तो ग्रामीण इलाकों का कायाकल्प कर सकता है. इस योजना का शुभारम्भ नवम्बर २००५ में देश के २०० सबसे गरीब जिलों से किया गया. २००९ के आम चुनाव के पहले अप्रैल २००८ यह योजना पूरे देश में लागू कर दिया गया.

२०१०-११ के केंद्र सरकार के बजट में एनआरईजीएस पर खर्च करने के लिए ४०,१०० करोड़ रुपये मंज़ूर किये गए. २०१२-१३ के बजट में एनआरईजीएस के लिए ४०,००० करोड़ रुपये मंज़ूर किये गए. लेकिन यह कभी स्पष्ट नहीं किया गया कि एनआरईजीएस के अंतर्गत संपूर्ण किये गए परियोजनाओं का मूल्यांकन कैसे किया जायेगा. यह हम कैसे मान लें कि इतनी बड़ी रकम समझदारी से व्यय हुई और देशवासियों को उससे काफी लाभ हुआ.

इस पृष्ठभूमि में तीनप्रश्न अहम् हो जाते हैं. १) जिन कामगारों को इस योजना के तहत रोज़गार मिलना चाहिए था उनको इस योजना से कितना लाभ हुआ? २) क्या यह लाभ टिकाऊ है? ३) योजना के अंतर्गत कितना और किस तरह की परियोजनाएं पूर्ण हो सकीं और उनसे कितना लाभ मिला और क्या यह लाभ स्थाई है?

कुछ राज्यों के लिए मैंने कुछ सहयोगियों के साथ पहले प्रश्न पर कुछ प्रकाश डाला है. इस परियोजना के रोज़गार पर प्रभाव के लिए निम्नलिखित दो वैज्ञानिक लेख देखें :

Jha, R., Bhattacharyya, S., Gaiha, R. and S. Shankar (2009), "Capture of Anti-poverty programs: the National Rural Employment Guarantee Program in India", Journal of Asian Economics, Vol. 20, pp. 456–64 और Jha, R. Gaiha, R., Shankar, S. and M. Pandey (2012) "Targeting Accuracy of the NREG: Evidence from Madhya Pradesh and Tamilnadu", forthcoming in European Journal of Development Research.

इस परियोजना के कामगारों के पोषण पर प्रभाव के लिए देखें : Jha, R. Bhattacharyya, B. and R. Gaiha (2011a) "Social Safety Nets and Nutrient Deprivation: An Analysis of the National Rural Employment Guarantee Program and the Public Distribution System in India", Journal of Asian Economics, vol. 22, pp. 189–201.

एनआरईजीएस से कामगारों को कितनी आर्थिक सहायता मिलती है- इस प्रश्न का हमने Jha, R., Gaiha, R. and M. Pandey (2012) "Net transfer benefits under India's National Rural employment guarantee scheme", Journal of Policy Modeling, vol. 34, pp. 296–311 में विश्लेषण किया है.

एनआरईजीएस से लाभ कितना स्थाई है इसका विश्लेषण हमने Jha, R., Gaiha, R., Pandey, M. and S. Shankar (2011b) "Switches in and out of NREGS — a Panel data analysis for Rajasthan. ASARC Working Paper 2011/02, Australian National University, Canberra में किया है.

इस लेख में मैं अंतिम प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालना चाहूँगा यानि हम इस बात का विषलेषण करना चाहेंगे कि एनआरईजीएस योजना के अंतर्गत कितने और किस तरह के परियोजनाएं पूर्ण हो सके और उनसे कितना लाभ मिला और यह लाभ स्थाई था या नहीं? इस अति महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकाश डालने के लिए हम ग्रामीण विकास मंत्रालय के सरकारी आंकड़ों का सहारा लेंगे. कृपया देखें : Government of India, Ministry of Rural Development (2012) "Report to the People", available at hhttp://nrega.nic.in/circular/People_Report.html (accessed 26th July 2012). यहाँ यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि इस रिपोर्ट के आंकड़े २००९-१० और २०११-१२ के ९ महीनों के हैं (२००९-१० और २०११-१२ के १ अप्रैल से ३१ दिसम्बर तक के).

पिछले कुछ वर्षों में भारत के आर्थिक विकास की दर काफी तेज़ रही है लेकिन इसके बावजूद बेरोज़गारी की भयंकर समस्या है. Government of India, Ministry of Labor and Employment (2010) Report on Employment and Unemployment Survey (2009–10), Labor Bureau, Government of India के अनुसार २००९-१० में बेरोज़गारी का दर ९.४ प्र.श. था. शहरी इलाकों में यह दर ७.३ प्र.श. था, जबकि ग्रामीण इलाकों में १०.१ प्र.श. मजदूर बेरोजगार थे. कितने मजदूर अपनी योग्यता से कम स्तर का काम करते हैं.

Report to the People के अनुसार २००९-१० में एनआरईजीएस के अंतर्गत एक औसत ग्रामीण परिवार को ४६.८३ दिनों का रोज़गार मिला. २०११-१२ में यह आकंड़ा घटकर ३२ हो गया जबकि १०० दिनों के रोज़गार की गारंटी दी गयी थी. २००९-१० में केवल ७.०८ प्र.श. ग्रामीण परिवारों को एनआरईजीएस के अंतर्गत १०० दिनों का रोज़गार मिल सका जो २०११-१२ में बढ़कर ३२ प्र.श. हो गया.

> *अगर एनआरईजीएस का बजट कम करके उस रकम को पेट्रोलियम सब्सिडी में लगाया गया होता तो पेट्रोल की कीमत इतनी नहीं बढ़ती. ग्रामीण रोज़गार बढ़ाने के लिए एनआरईजीएस से कई बेहतर उपाय हैं जैसे कृषि, जल संसाधन, सफाई व्यवस्था आदि में निवेश.*

राष्ट्रीय स्तर पर २००९-१० एनआरईजीएस के बजट की राशि का केवल ६६.६५ प्र.श. खर्च किया जा सका था जबकि २०११-१२ में यह घटकर ५३.७३ प्र.श. रह गया. यानि बजट के करीब आधे पैसे खर्च नहीं किये जा सके. २००९-१० में ३९ प्र.श. परियोजनाएं पूर्ण कि जा सकीं जबकि २०११-१२ में केवल ९.५४ प्र.श. परियोजनाएं पूर्ण किये जा सके.

राज्यों के स्तर पर इन आंकड़ों का बहुत अंतर नहीं है - कोई भी राज्य न तो बहुत अच्छी उपलब्धि प्राप्त कर सका है और न कोई राज्य बहुत अधिक पिछड़ा है. फिर से कहना चाहूँगा कि Report to the People में हरेक वर्ष के ९ महीनों के आंकड़े हैं.

हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचना ही होगा कि एनआरईजीएस का अनुभव काफी निराशाजनक रहा है. समय के साथ इसकी उपलब्धियां कम होती जा रहीं हैं. आर्थिक तंगी के इस समय में जब देश पर विदेशी और देशी कर्ज और वित्तीय घाटे का बहुत बड़ा भार है इस योजना पर और अधिक खर्च करना मुनासिब नहीं लगता है. २०१२-१३ के बजट दस्तावेजों के अनुसार २०११-१२ में एनआरईजीएस के बजट से करीब १७,००० करोड़ रूपये खर्च नहीं किये जा सके. २०११-१२ में खाद्यान्न पर सब्सिडी ६३,८४४ करोड़ था, उर्वरक पर सब्सिडी ६२,३०१ करोड़ था और पेट्रोलियम पर ३८,३७१ करोड़ की सब्सिडी दी गयी, यानि २०११-१२ में एनआरईजीएस बजट पेट्रोलियम सब्सिडी से अधिक था और उसमे से भी १७,००० करोड़ रुपये खर्च नहीं किये जा सके!

इस बात पर ध्यान देना होगा कि पेट्रोलियम सब्सिडी तो अर्थव्यवस्था के इंजन को गति देती है पर एनआरईजीएस पर खर्च की गई रकम कोई ख़ास लाभ नहीं देती. अगर एनआरईजीएस का बजट कम करके उस रकम को पेट्रोलियम सब्सिडी में लगाया गया होता तो पेट्रोल की कीमत इतनी नहीं बढ़ती. ग्रामीण रोज़गार बढ़ाने के लिए एनआरईजीएस से कई बेहतर उपाय हैं जैसे कृषि, जल संसाधन, सफाई व्यवस्था आदि में निवेश. एनआरईजीएस पर खर्च किये गए रकम का औचित्य केवल रोज़गार मुहैय्या करने के स्तर पर ही नहीं अपितु इस रोज़गार से कौन सी परियोजनाएं कार्यान्वित होती हैं और उनसे क्या लाभ होता है- पर भी निर्भर करता है.

यह एक विडंबना ही है कि राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना का नाम बदल के महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना कर दिया गया है. महात्मा गाँधी सरकारी पैसों के इस अपव्यय का कभी समर्थन नहीं करते.■

मधु अरोड़ा

४ जनवरी १९५८ को जन्म. शिक्षा : एम. ए., सामाजिक विषयों पर लेखन, कई लेखकों के साक्षात्कार प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित. रेडियो पर कई परिचर्चाओं में हिस्सेदारी, मंचन से भी जुड़ी हैं. सम्प्रति - एक सरकारी संस्थान में कार्यरत.

संपर्क : एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स, फिल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७

ईमेल : shagunji435@gmail.com

बातचीत

प्रसिद्ध कथाकार तेजेन्द्र शर्मा से मधु अरोड़ा की बातचीत

मधु अरोड़ा : लेखन आपके लिये क्या है ?

तेजेन्द्र शर्मा : लेखन मेरे लिए आवश्यकता भी है और मजबूरी भी. जब कभी ऐसा कुछ घटित होते देखता हूं जो मेरे मन को आंदोलित करता है तो मेरी कलम स्वमेव चलने लगती है. मेरे लिए लिखना कोई अय्याशी नहीं है, इसीलिए मैं लेखन केवल लेखन के लिए जैसी धारणा में विश्वास नहीं रखता. लिखने के पीछे कोई ठोस कारण और उद्देश्य होना आवश्यक है. न ही मैं स्वांतः सुखाय लेखन की बात समझ पाता हूं. मैं अपने प्रत्येक लिखे हुए शब्द के माध्यम से अपनी बात आम पाठक तक पहुंचाना चाहता हूं. हां यह सच है कि मैं हिन्दी के मठाधीशों को प्रसन्न करने के लिए भी नहीं लिखता. मुझे एक अनजान पाठक का पत्र किसी बड़े आलोचक की शाबाशी के मुकाबले कहीं अधिक सुख देता है. लेकिन वहीं यह भी एक ठोस सच्चाई है कि जब कभी किसी स्थापित लेखक या आलोचक ने मेरी रचना को सराहा है, मन को अच्छा लगा है.

हिन्दी के मठाधीशों से आपका क्या तात्पर्य है ?

पिछले कम से कम तीन दशकों से रचनाकार पाठकों से कट गया है. क्योंकि वह आलोचकों को ख़ुश करने के लिये लिखने लगा है. उसके मन की चाहत है कि प्रमुख आलोचक उसके साहित्य की सराहना करें. वहीं शीर्ष आलोचकों ने तय कर दिया है कि लेखकों को अपनी रचनाएं कमर्शियल पत्रिकाओं में छपने के लिये नहीं भेजनी. यह फ़तवे जारी किये गये कि हमें मज़दूर, किसान और भ्रष्टाचार पर ही लिखना है. यह फ़तवे जारी करने वाले ही आज मठाधीश कहलाते हैं.

आपकी निगाह में लेखक एक आम आदमी से किस प्रकार भिन्न होता है ?

मुझे लगता है कि परिष्कृत सोच एवं संवेदनशीलता एक लेखक को एक आम आदमी से अलग करती है. अब देखिये कनिष्क विमान की दुर्घटना एक आम आदमी को भी आंदोलित करती है और एक लेखक को भी. जहां आम आदमी समय के साथ-साथ उस घटना को भुला देता है, वहीं एक संवेदनशील लेखक उस घटना को अपने दिमाग़ में मथने देता है. समय के साथ-साथ वह घटना तो अवचेतन मन में चली जाती है, लेकिन एक रचना का जन्म हो जाता है. जहां आम आदमी अपने आप को केवल घटना तक सीमित रखता है, वहीं एक अच्छा लेखक उस घटना के पीछे की मारक स्थितियों की पड़ताल करता है और एक संवेदनशील रचना रचता है. मैं लेखन के लिये किसी ख़ास राजनीतिक विचारधारा का पक्षधर होना आवश्यक नहीं समझता.

आप अपनी रचना प्रक्रिया के दौरान किस मानसिकता से गुज़रते हैं ?

मेरे लिए रचना प्रक्रिया कोई नियमबद्ध कार्यक्रम नहीं है. यह एक निरंतर प्रक्रिया है. आसपास कुछ न कुछ घटित होता है जो कि मन को उद्वेलित करता है. दिल और दिमाग़ दोनों ही उस के बारे में जुगाली करते रहते हैं. और फिर एकाएक रचना पहले दिमाग़ में और फिर पन्नों पर जन्म लेती है. कहानी के मुकाबले मैं पाता हूं कि कविता के लिए उतना सोचना नहीं पड़ता. ग़ज़ल या कविता जैसे स्वयं उतरती चली आती है. यदि मैं चाहूं भी तो सायास ग़ज़ल या कविता नहीं लिख पाता जबकि कहानी के लिए रोज़ाना कुछ पन्ने काले किए जाते हैं चाहे उन्हें खारिज ही क्यों न करना पड़े. मेरे पहले ड्राफ्ट में खासी काटा पीटी होती है क्योंकि मैं लिखते-लिखते ही सुधार भी करता जाता हूं. कहानी लिखने की

तेजेन्द्र शर्मा

२१ अक्टूबर १९५२ को जगरांव, पंजाब में जन्म. दिल्ली विवि से अंग्रेजी में एमए और कंप्यूटर साइंस में डिप्लोमा हासिल किया. दूरदर्शन के लिये शांति सीरियल का लेखन. अन्नू कपूर द्वारा निर्देशित फिल्म अभय में नाना पाटेकर के साथ अभिनय. बी.बी.सी. लंदन, ऑल इंडिया रेडियो व दूरदर्शन से कार्यक्रमों की प्रस्तुति, नाटकों में भाग एवं समाचार वाचन. ऑल इंडिया रेडियो व सनराईज रेडियो लंदन से बहुत सी कहानियों का प्रसारण. ढिबरी टाइट के लिये महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार, सहयोग फाउंडेशन का युवा साहित्यकार पुरस्कार, सुपथगा सम्मान, कृति यू.के. द्वारा सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार.

विदेश में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य से यह शिकायत है कि दो एक रचनाकारों को छोड़ कर वहां का हिन्दी लेखक नॉस्टेलजिया से बाहर नहीं आ पाता. वह अपने आपको अपने स्थानीय समाज के साथ जोड़ नहीं पाता और इसलिए ऐसे समाज के बारे में लिखता है जिसे वह पीछे छोड़ आया है.

प्रक्रिया में कंसंट्रेशन अधिक समय तक बनाए रखना पड़ता है. मेरी एक कोशिश ज़रूर रहती है कि मैं अपने चरित्रों की मानसिकता, सामाजिक स्थिति एवं भाषा स्वयं अवश्य समझ लूं, तभी अपने पाठकों से अपने चरित्रों का परिचय करवाऊं.

लंदन में बसने के पश्चात आपके लेखन में सकारात्मक या नकारात्मक, किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है?

पहले नकारात्मक. लंदन आने के पश्चात पहले तो वही नॉस्टेलजिया वाली बात कि बात-बात पर भारत को मिस करना और याद करके परेशान होना. मैं जब-जब कलम उठाऊं तो भारत को ले कर ही कुछ न कुछ काग़ज़ पर उतरना शुरू कर दे. मैंने बहुत से पन्ने लिखे और फाड़ दिये. मुझे विदेश में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य से यह शिकायत है कि दो एक रचनाकारों को छोड़ कर वहां का हिन्दी लेखक नॉस्टेलजिया से बाहर नहीं आ पाता. वह अपने आपको अपने स्थानीय समाज के साथ जोड़ नहीं पाता और इसलिए ऐसे समाज के बारे में लिखता है जिसे वह पीछे छोड़ आया है. मज़ेदार बात यह है कि जिस समाज को वह पीछे छोड़ आया है, वह भी बदल जाता है. अंततः वह किसी ऐसे समाज के बारे में लिखने लगता है जो वास्तविक है ही नहीं. वह समाज केवल उसके दिल-ओ-दिमाग़ में रहता है. सकारात्मक प्रभाव यह पड़ा कि मैंने इंगलैण्ड के समाज को समझने का प्रयास किया, वहां के गोरे आदमी की मानसिकता को जानने की कोशिश की और एक मुहिम चलाई की हिन्दी लेखक विदेश में किए गये अपने संघर्ष या अपने आसपास के जीवन को समझने का प्रयास करें और उसे ही अपने लेखन का विषय बनाए. क़ब्र का मुनाफ़ा, तरक़ीब, कोख का किराया, मुझे मार डाल बेटा, ये क्या हो गया, गंदगी का बक्सा, बेघर आंखें मेरे इन्हीं प्रयासों का फल हैं.

आप यू.के. हिन्दी लेखन के विषय में कुछ बताएं.

मैं जब भारत में रहता था तो मैंने यू.के. के केवल एक ही साहित्यकार के बारे में सुन रखा था या उनकी कविता पढ़ रखी थी. वे साहित्यकार हैं डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव - जिन्हें कथा यू.के. द्वारा प्रथम पद्मानंद साहित्य सम्मान से सम्मानित किया गया. यहां आकर मैंने पाया कि कविता विधा को ले कर यहां बहुत से साहित्यकार सक्रिय हैं. वहीं कहानी क्षेत्र में एक वैक्यूम सा दिखाई दे रहा था. इस वैक्यूम को भरने की शुरूआत कथा यू.के. ने कथा गोष्ठियां आयोजित करके यूनाइटेड किंगडम में हिन्दी कहानी लेखन का माहौल पैदा करने का प्रयास किया. कथा यू.के. ने कथा-लंदन जैसा कहानी संग्रह प्रकाशित करवाया जिसमें वे कहानियां शामिल हैं जिन्हें कथागोष्ठियों में पढ़ा गया. इस संग्रह की एक विशेषता यह भी है कि इसमें उन कथागोष्ठियों की रिपोर्ट भी शामिल थीं जिनमें इन कहानियों को पढ़ा गया था. इस तरह हमने केवल लेखक ही नहीं पाठकों और श्रोताओं का स्तर भी विश्व तक पहुंचाया. कथा यू.के. ने एक और कहानी संग्रह प्रकाशित करवाया कथा-दशक जिसमें दस इंदु शर्मा कथा सम्मान से सम्मानित कथाकारों की रचनाएं हैं.

साहित्य में अश्लीलता के प्रश्न पर आप क्या कहना चाहेंगे?

आज के संदर्भ में यह प्रश्न थोड़ा आप्रसांगिक हो गया है. कोई भी चीज़ अपने संदर्भों के तहत ही अश्लील हो सकती है. जैसे भारत को स्वतंत्रता मिलने से पहले भारतीय सिनेमा का सबसे लम्बा चुम्बन पर्दे पर कलाकार हरि शिवदासानी (करिश्मा एवं करीना कपूर के नाना) ने लिया था, और वह अश्लील नहीं माना गया. फिर एक ऐसा समय आया कि हीरो हीरोईन कूल्हे मटका मटका कर अश्लील इशारे करते थे किन्तु उनको अश्लील नहीं माना जाता था, जबकि चुम्बन को अश्लील माना जाने लगा. यही हाल डी.एच. लॉरेंस के उपन्यास लेडी चैटरलीज़ लवर के बारे में कही जा सकती है कि जब उसका प्रकाशन हुआ था, उसे अश्लील मान कर उस पर प्रतिबंध लगा दिया गया था. जबकि आज यही उपन्यास आसानी से हर जगह उपलब्ध है. मृदुला गर्ग के बोल्ड दृश्यों और भाषा पर भी आज कोई बात नहीं करता. यानि कि अश्लीलता के संदर्भ समय और काल के साथ साथ बदलते रहते हैं.

आपकी कहानी 'कल फिर आना' बोल्ड होने के साथ ही उस पर अश्लीलता के आरोप लगे, सेक्स का वीभत्स रूप माना गया, आपको काफी आलोचना का सामना पड़ा, इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

कल फिर आना कहानी पर शुरू से ही दो तरह की प्रतिक्रियाएं मिलीं. हंस के सहायक संपादक और वरिष्ठ कथाकार संजीव इस कहानी को बदमाशी कहते रहे और इसे छापने के विरुद्ध थे. जबकि स्वयं राजेन्द्र यादव इस कहानी में दिखाए गये नारी मन की फ्रस्ट्रेशन से बहुत प्रभावित हुए. जैसे

आम तौर पर किसी भी रचना के पूरी होने के बाद एक विचित्र-सी संतुष्टि का आभास होता है. लेकिन तुरंत मन कहता है कसर रही और अंदर का लेखक अगली चुनौती के लिए तैयार हो जाता है. हालांकि मेरी कहानियों की हाल ही में गहराई से पड़ताल की जाने लगी है. फिर भी एक भावना बनी हुई है कि मुझे अब एक उपन्यास लिखना है.

बहुत सी महिलाएं बुर्के के विरुद्ध हो कर भी उसके पक्ष में बात करती हैं, ठीक वैसे ही उस पुरूष-प्रधान समाज में कुछ औरतें भी सेक्सुअल फ्रस्ट्रेशन को अपना भाग्य मान लेती हैं. मैंने इस कहानी में बिना किसी नारेबाज़ी के दिखाया है कि मेरी नायिका रीमा (जो कि परिवार के संस्कारों में बंधी हुई है) अपने पति से अपने हक़ के लिये गाहे बगाहे अपनी बात कहती रहती है. मगर पति की तरफ़ से कोई सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं होती. रीमा स्वयं अपने घर के बाहर सेक्स के लिये किसी को खोजने का प्रयास नहीं करती. मगर एक हादसा उसमें इतनी हिम्मत भर देता है कि वह निडर हो कर अपने बलात्कारी को कल फिर आने का न्यौता दे बैठती है.

आपकी कहानियों में मृत्यु, अकेलापन, डर, बुढ़ापा, बेमेल विवाह बार-बार आते हैं. इसकी कोई ख़ास वजह ?

मधु जी कोई भी लेखक वही लिखता है जो देखता है या फिर भुगतता है. मैंने मौत को बहुत करीब से देखा है. पहले पिता जी की दिल की बीमारी से मृत्यु और फिर इंदु जी की कैंसर से मौत. इसके पहले भी विमान दुर्घटना में तीन सौ उनतीस यात्रियों की मृत्यु जैसे हादसे किसी भी लेखक को लिखने के लिए मजबूर कर देंगे. फ्लाइट परसर होने के नाते मैंने विदेश में बहुत से डरे हुए भारतीयों को देखा है. कुछ खोने का डर मैंने महसूसा है. अपने पिता की उनके बुढ़ापे में मदद ना कर पाने का अपराधबोध मुझे हमेशा सालता है. ज़ाहिर है कि यह सब थीम मेरी कहानियों में आ ही जाते हैं. वैसे मेरी कहानियों का एक महत्वपूर्ण थीम सम्बन्धों में आता खोखलापन और जीवन पर हावी होती भौतिकता भी है.

लेखन में जब आप खुद को उलझा पाते हैं, तो क्या करते हैं ?

ऐसा कई बार हो जाता है कि आपने रचना शुरू की और रास्ते में ही उलझ गये. कुछ एक रचनाएं मैंने तीन वर्ष पहले लिखनी शुरू की थीं, लेकिन वे पूरी नहीं हो पाई हैं. यानि कि मिस-कैरिज जैसा कुछ हो गया. लेकिन ऐसा भी हुआ है कि कोई रचना छः महीने के बाद उठाई और वहीं से दोबारा शुरू हो गये जहां कि छोड़ी थी. लेकिन मैं बीच बीच में ग़ज़ल या कविता भी लिखने का प्रयास कर लेता हूं. इस से थोड़ा चेन्ज मिल जाता है.

आप समकालीन लेखन में अपने आप को कहां पाते हैं ?

यह तो कोई आलोचक ही बता पाएगा. वैसे समकालीन लेखन में चर्चा उन्हीं लोगों की हो पाती है जो किसी गुट विशेष से जुड़े होते हैं. हां मैं इस बात से संतुष्ट हूं कि जिस तरह पहले मेरे लिखे साहित्य की अवहेलना होती थी, अब हालात वैसे नहीं हैं. दरअसल किसी भी साहित्यकार के लिये इस प्रश्न का उत्तर सहज रूप से दे पाना आसान नहीं है. कोई ऐसा मानदंड स्थापित नहीं हुआ है जिससे पता चल सके कि साहित्य में कौन-कौन लेखन नम्बर एक दो या तीन पर खड़े हैं. कहानीकारों की कई पीढ़ियां एक साथ सक्रिय हैं.

क्या आप अपने लेखन से संतुष्ट हैं ?

संतुष्ट होने का अर्थ होगा कि लिखना बंद. हां आम तौर पर किसी भी रचना पूरी होने के बाद एक विचित्र-सी संतुष्टि का आभास होता है. लेकिन तुरंत मन कहता है कसर रही और अंदर का लेखक अगली चुनौती के लिए तैयार हो जाता है. हालांकि मेरी कहानियों की हाल ही में गहराई से पड़ताल की जाने लगी है. फिर भी एक भावना बनी हुई है कि मुझे अब एक उपन्यास लिखना है. हर बार एक नई चुनौती सामने आती है. मगर मेरे साथ जो संगठन के काम हैं वो भी मेरा काफ़ी समय ले लेते हैं. अब सोचने लगा हूं कि लेखन के लिये अधिक समय देना होगा.

साहित्य में जो मेन-स्ट्रीम को लेकर एक सोच बनी हुई है, उसके बारे में आप क्या सोचते हैं ? क्या यह सही मायने में मुख्यधारा है ?

हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा वह है जिसमें लेखक और पाठक दोनों एक ही हैं. यदि आप मार्क्सवाद से प्रभावित हैं और आपके थीम मज़दूर, किसान, बाज़ारवाद, भ्रष्टाचार और सरकार विरोध हैं तो आप इस मुख्यधारा का हिस्सा हैं. अन्यथा आप कितना भी अच्छा लिखते हों, आप इस धारा में नहीं तैर सकते. इस मुख्यधारा का पाठकों के साथ कोई रिश्ता नहीं. यहां आप आलोचकों की वाह-वाही के लिये लिखते हैं. मैं उस लेखन का पक्षधर हूं जो पाठक के साथ एक संवाद पैदा करे. साहित्य का पठनीय होना उसके महान होने की पहली शर्त है.

क्या आप अपने देश भारत को छोड़ने की कचोट महसूस करते हैं ?

देखिए मुंबई में जितने भी हिंदी के कवि हैं वे सब किसी अन्य शहर, गांव या कस्बे से आए हैं. उनके लेखन में उस

स्थान की तड़प देखी और महसूस की जा सकती है. इसी को नॉस्टेलजिया कहा जाता है. मैं झूठ बोलूंगा यदि कहूं कि मैं मुंबई की यादों को लेकर परेशान नहीं होता. लेकिन जब दिल्ली छोड़ कर मुंबई आया था तो दिल्ली को लेकर भी कुछ ऐसा ही हुआ था. एक बात स्पष्ट करना चाहूंगा कि रहने के लिए लंदन एक बेहतरीन जगह है. यहां टुच्चा भ्रष्टाचार कहीं नहीं है. मेरी सोच यह है कि मैं एक अच्छी जगह रह रहा हूं. जब कभी मेरे दिल में यादें एक तूफ़ान खड़ा कर देती हैं तो मैं टिकट कटवा कर भारत आ जाता हूं. आम इन्सान के लिये ब्रिटेन में ख़ास ख़्याल रखा जाता है.

लंदन बेहतरीन जगह है और नस्लवाद भी तो बेहतर है, आप क्या कहना चाहेंगे?

नस्लवाद जितना भारत में है शायद उतना कहीं नहीं. जातियों का चक्कर और फिर धर्मों की लड़ाई. और कुछ नहीं तो गोरे और काले का भेद. दरअसल जिस राम राज्य की हम केवल कल्पना करते हैं, उसे हम ब्रिटेन में व्यवहारिक रूप से देख सकते हैं. हमारे अपनाए हुए मुल्क़ में दिखावा या दोगलापन कहीं दिखाई नहीं देता. अगर देता है तो हमारे अपने लोगों में ही दिखाई देता है. मुझे ब्रिटेन के गोरे समाज ने हमेशा से आदर दिया है और ख़ूब दिया है. ब्रिटिश मंत्री, एवं सांसद मेरे साथ वैसे ही पेश आते हैं जैसे किसी गोरे अंग्रेज़ के साथ. ब्रिटेन में इन्सान को इन्सान समझा जाता है. यहां सच में उम्र, सेक्स, या वर्ग के लिये कोई जगह नहीं है.

आप पर बार-बार आरएसएस का पक्षधर होने का आरोप लगता रहा है. आप इस पर क्या प्रतिक्रिया देना चाहेंगे?

मैं भारत के किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हूं. भारत में समस्या यह है कि यदि आप मार्क्सवादी नहीं हैं तो यह मान लिया जाता है कि आप दक्षिणपंथी हैं. यह तो कोई सही तरीका न हुआ. साहित्य में बहुत सी ज़मीन और भी है. मैं विचारधारा के साहित्य को महत्वपूर्ण नहीं मानता. मेरा मानना है कि साहित्य के लिये विचार ज़रूरी है न कि विचारधारा. विचार मनुष्य के भीतर से जन्म लेता है जबकि विचारधारा ऊपर से थोपी जाती है. जब-जब मुझ पर राजनीतिक आरोप लगाए जाते हैं, मैं मुस्कुरा भर देता हूं. मेरी रचनाएं प्रमाण हैं इस बात का कि मैं केवल आम आदमी के बारे में सोचता हूं किसी राजनीतिक विचारधारा का गुलाम नहीं हूं.

> *मैं विचारधारा के साहित्य को महत्वपूर्ण नहीं मानता. मेरा मानना है कि साहित्य के लिये विचार ज़रूरी है न कि विचारधारा. विचार मनुष्य के भीतर से जन्म लेता है जबकि विचारधारा ऊपर से थोपी जाती है. जब-जब मुझ पर राजनीतिक आरोप लगाए जाते हैं, मैं मुस्कुरा भर देता हूं.*

इंदु शर्मा कथा सम्मान अब अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप धारण कर चुका है, इसकी भावी योजनाएं क्या हैं?

अभी तक इंदु शर्मा कथा सम्मान के साथ केवल सम्मान ही जुड़ा है. यही इसकी विशेषता है. यह सम्मान एक लेखक द्वारा एक लेखिका की याद में लेखकों को दिया जाता है. तो यह एक लेखकीय मामला है जिसके साथ भावनाएं जुड़ी हैं, कोई अमीर ट्रस्ट या धन्ना सेठ नहीं जुड़ा है. इस सम्मान के साथ हमारे पूरे परिवार जुड़े हैं. हम चाहते हैं कि इस सम्मान को अब पुरस्कार का रूप दे सकें और इसके साथ एक सम्मानजनक राशि भी जुड़ सके.

भारत में शुरू किया गया यह सम्मान ४० वर्ष से कम उम्र के कथाकारों को दिया जाता था. किन्तु लंदन में उम्र और विधा की सीमा हटा दी गई है. क्या आपको नहीं लगता कि इससे संभावनाशील कथाकारों का हक़ मारा गया है.

जब किसी भी वस्तु का आकार बदलता है तो टुकड़ों में ही बदले ऐसा आवश्यक नहीं है. भारत में इंदु शर्मा कथा सम्मान का अपना एक स्वरूप था लेकिन जब उसे अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप देने की बात हुई तो बहुत से पहलुओं पर विचार करना पड़ा. कथा तो कहानी भी है और उपन्यास भी. यानि कि कहानी के साथ उपन्यास को भी जोड़ दिया गया. आज का संभावनाशील लेखक ही कल का प्रतिष्ठत लेखक बन जाता है. यानि कि अब इस सम्मान के साथ आरक्षण नीति को समाप्त कर के इसे खुले बाज़ार में खड़ा कर दिया है. जो भी पुस्तक सर्वश्रेष्ठ होगी स्वयं ही सम्मान की हकदार हो जाएगी. हम लेखक को पहले भी सम्मानित नहीं करते थे और आज भी नहीं करते. पहले भी कृति का सम्मान होता था और आज भी. चालीस वर्ष से कम उम्र के लेखक इस सम्मान के घेरे से बाहर नहीं कर दिये गए. वास्तव में एक युवा लेखक का उपन्यास काला पहाड़ अंतिम दो तक पहुंच गया था. अब इस सम्मान के साथ आयु सीमा जैसी कोई बात नहीं है. इसे कोई भी प्राप्त कर सकता है, शर्त केवल एक ही है कि रचना उत्कृष्ट होनी चाहिये. ■

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

नज़रिया

उधार का सोच

आर्थिक विकास से जुड़े मुद्दों पर काम करने वाले अर्थशास्त्रियों के बीच आजकल एक नए मुद्दे की चर्चा गरम है. यह मुद्दा है गरीबों को नकद सहायता देने का. इस विषय पर जोसेफ हेन्लन, अर्माण्डो बेरिएन्तोस और डेविड ह्यूल्म ने एक किताब लिखी है - जस्ट गिव मनी टू द पूअर. इन तीनों लेखकों ने दक्षिण गोलार्ध के ४५ देशों में अपनाई गई इस नई सहायता प्रणाली के बारे में बताया है. लेखकों का कहना है कि इन सभी देशों में गरीबों का जीवन स्तर सुधरा है तथा वे अपने जीवन से संबंधित फैसले खुद ले रहे हैं. अभी तक गरीबों को मदद देने का तरीका यह रहा है कि उन्हें मुफ्त अनाज दे दिया जाए, उनके लिए मकान बनवाने में आर्थिक मदद की जाए, उनके बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा का प्रबंध किया जाए आदि-आदि. लेकिन इस प्रणाली में मदद पानेवालों के विकल्प सीमित हो जाते हैं - किस-किस क्षेत्र में मदद की जाएगी, इसका निर्णय वे खुद नहीं, बल्कि सरकार या गैरसरकारी संगठनों के माध्यम से विदेशी दानदाता करते हैं. इन लेखकों का कहना है कि इसके स्थान पर अगर जरूरतमंद लोगों को सहायता के रूप में सीधे मुद्रा दे दी जाए, तो इस मुद्रा का उपयोग वे अपनी इच्छाओं और प्राथमिकताओं के आधार पर कर सकते हैं.

इस सिलसिले में अफ्रीका के समस्याग्रस्त देश मोजांबिक का एक उदाहरण पेश किया जाता है. वहां के गृहयुद्ध से

> *मूल सवाल यह है कि गरीबी पैदा कहां से होती है. अगर किसी देश की अर्थव्यवस्था ऐसी है जिसका विकास होने से एक दिन में दो अमीर पैदा होते हैं और चार गरीब, तो सिर्फ बाहरी सहायता से गरीबी कम नहीं हो सकती.*

निवृत्त हुए लगभग ९० हजार सैनिकों को दानदाताओं से १५ डॉलर दैनिक की सहायता दी जा रही थी. साथ ही, अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए कुछ और रकम भी प्रदान की गई थी. पूर्व-सैनिकों की एक टोली ने अपना-अपना पैसा मिला कर एक टेलीविजन, एक वीडियो रेकॉर्डर और एक जनरेटर खरीदा. उसके बाद वे दो फिल्मों के डीवीडी लेकर गांव-गांव घूमने लगे. लोगों को फिल्में दिखाते और इस शो का चार्ज लेते. जो पैसा नहीं दे सकते थे, उनसे बाजरा या उनके पास जो भी फसल होती, उसकी थोड़ी-सी मात्रा ले लेते. इस तरह इन पूर्व-सैनिकों का यह धंधा चल निकला और उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर होने लगी. इसी तरह, कहा जाता है कि जिन-जिन देशों में नकद सहायता देने का विकल्प अपनाया गया है, वहां-वहां गरीब लोगों को सच्ची राहत मिली है और उनके रहन-सहन के स्तर में सुधार आया है.

'गरीबों को नकद' का यह सिद्धांत भविष्य में लोकप्रिय हो सकता है, क्योंकि गरीब आबादी की स्थिति को सुधारने के जितने भी प्रयोग अभी तक किए गए हैं, वे सभी विफल

साबित हुए हैं. पहले उम्मीद की जाती थी कि किसी देश का आर्थिक विकास होगा, तो गरीबी अपने आप कम होती जाएगी. लेकिन रिसन का यह सिद्धांत गरीबी हटाने में कामयाब नहीं हुआ. तब गरीबी पर प्रत्यक्ष हमले की रणनीति अपनाई गई. भारत में इस रणनीति पर अमल इंदिरा गांधी के शासनकाल शुरू हुआ. कम कीमत पर राशन, आवास निर्माण में सरकारी सहायता, स्वरोजगार शुरू करने के लिए कम ब्याज दर पर ऋण आदि मुहैया कराने वाले अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए. 'काम के बदले अनाज' योजना उन्हीं दिनों प्रारंभ हुई थी, जिसका नया रूप रोजगार गारंटी योजना है. सरकारी आंकड़ों के हिसाब से, इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप गरीबों की संख्या में भारी कमी आई है. लेकिन अर्थशास्त्रियों के एक बड़े समूह का कहना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब लोगों की कठिनाइयों में जरूर कमी आई है, पर गरीबी की व्यापकता पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं पड़ा है. इसलिए हो सकता है कि राहत कार्यक्रमों के स्थान पर भारत में भी 'गरीबों को नकद' नीति पर अमल शुरू हो जाए.

'गरीबों को नकद' नीति पर विचार करते समय हमें भारत की विशेष स्थिति को नजर में रखना चाहिए. ऊपर मोजांबिक का उदाहरण दिया गया है. मोजांबिक की राष्ट्रीय जनसंख्या मात्र २ करोड़ १६ लाख है. भारत में दिल्ली और कोलकाता, इन दो महानगरों की आबादी इससे कहीं ज्यादा है. इसी तरह, ब्राजील, जहां 'गरीबों को नकद' कार्यक्रम पर अमल हो रहा है, की कुल आबादी २० करोड़ है, जब कि हमारे मात्र एक राज्य उत्तर प्रदेश की ही आबादी २० करोड़ से ऊपर है. दूसरी बात यह है कि भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहनेवालों की संख्या दुनिया के किसी भी देश से बहुत ज्यादा है. इसलिए सवाल यह उठता है कि क्या इतनी बड़ी आबादी को नकद सहायता देकर गरीबी की समस्या का समाधान किया जा सकता है?

बात यह है कि जब किसी गरीब आदमी को सहायतास्वरूप नकद मुद्रा मिलती है, तब सबसे पहले वह अपनी दबी हुई भूख को मिटाने की कोशिश करता है. फिर कपड़ों का नंबर आता है. उसके बाद घर की मरम्मत की ओर ध्यान दिया जाता है. मनोरंजन, शिक्षा, इलाज आदि जरूरतें भी मुंह बाए खड़ी रहती हैं. इस तरह सहायता की सारी राशि उपभोग का न्यूनतम स्तर हासिल करने में खर्च हो जाती है. लेकिन इससे गरीब परिवार की आय नहीं बढ़ती. असली समस्या यही है. जब तक गरीबों की आय बढ़ाने के उपायों पर ध्यान नहीं दिया जाता, तब तक आप उनकी सहायता चाहे जिस तरह से करें, उनकी स्थिति में बुनियादी सुधार आना कठिन है. हो सकता है, कुछ प्रतिशत परिवार नकद सहायता की राशि का उपयोग छोटा-मोटा रोजगार

> पेंशन देना एक बात है, कमाऊ रोजगार देना दूसरी बात. पर्याप्त पेंशन कुछ प्रतिशत लोगों को दी जा सकती है, पर तीन-चौथाई लोगों की गृहस्थी सरकार द्वारा भेजे गए मनी ऑर्डर से नहीं चल सकती.

शुरू करने में करें, लेकिन ये वे परिवार होंगे जो कुछ कम गरीब हैं. ज्यादातर परिवारों के लिए यह राशि फौरी जरूरतों को पूरा करने में ही खर्च हो जाएगी.

मूल सवाल यह है कि गरीबी पैदा कहां से होती है. अगर किसी देश की अर्थव्यवस्था ऐसी है जिसका विकास होने से एक दिन में दो अमीर पैदा होते हैं और चार गरीब, तो सिर्फ बाहरी सहायता से गरीबी कम नहीं हो सकती. पेंशन देना एक बात है, कमाऊ रोजगार देना दूसरी बात. पर्याप्त पेंशन कुछ प्रतिशत लोगों को दी जा सकती है, पर तीन-चौथाई लोगों की गृहस्थी सरकार द्वारा भेजे गए मनी ऑर्डर से नहीं चल सकती. नगद सहायता का विकल्प उधार के सोच का एक और नमूना है. यह हमारा मौलिक विचार नहीं है. मौलिक विचार अपनी स्थितियों के अनुरागपूर्ण अध्ययन से पैदा होता है. उधार का सोच उधार की अर्थव्यवस्था को और समस्याग्रस्त बनाता है.■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

अप्रमेयं

शाश्वतं की ही परिणति है अप्रमेयं. आदि अंत कोउ जासु न पावा/मति अनुमानि निगम अस गावा. तुलसी के इस अप्रमेयं शब्द के भाव को कभी कवि इकबाल ने ऐसे व्यक्त किया था : जेहन मे जो घिर गया लाइन्तहा क्यों कर हुआ/जो समझ में आ गया वो खुदा क्यों कर हुआ. अप्रमेयं का अर्थ यह भी है कि ईश्वर अगणितीय (Non-mathematical) है. यह शब्द सिर्फ हमारी ज्ञानात्मक शक्ति (noetik ability) की सीमा की ओर ही इशारा नहीं करता बल्कि यह भी बताता है कि ईश्वर किसी सूत्र या समीकरण में नहीं अंटता. बात सिर्फ यही नहीं है कि वह जटिलता (complexity) से मुक्त है. बल्कि यह है कि जटिलता किसी भी सीमा के पार (irreducible) है. 'मति अनुमान' में इसी अनुमान मात्र की बात कही गई है. क्योंकि ईश्वर के बारे में असंख्य कारकों पर एक असीमित संवेदनशील निर्भरता (infinite sensitive dependence) रखनी पड़ती है. नोएल बीचब्राउट ने लिखा है:- "Even a small change in just one variable say the difference between 21.999999995 and 21.9999999996 results in a system behaving unpredictably' (मात्र एक कारक में २१.९९९९९९९९५ एवं २१.९९९९९९९९९६ का लघु परिवर्तन मात्र भी सिस्टम के व्यवहार में अनैश्चित्य ला देता है). यह बात उसने मौसम के संदर्भ में कही है. इस सिद्धांत को 'तितली प्रभाव' कहा जाता है. तितली के पंखों की अमेजन में फड़फड़ाहट ओकलोहामा में तूफान ला सकती है. तो हम किन-किन चीजों की गणना करेंगे?

> तुलसी राम को अप्रमेय क्यों कह रहे हैं? राम तो सगुण हैं और साकार, राम तो सशरीर हैं, सावयव. राम तो गोचर हैं और समूर्त भी. राम के कलेवर और काया पर, राम के वर्ण और वपु पर, राम के विग्रह और छवि पर मुग्ध कवि तुलसी ने स्वयं पृष्ठ पर पृष्ठ भरे हैं.

ईश्वर की पैमाइश क्या है? उसे घनमीटर में मापें या लीटर में? वह वर्गमीटर में होगा या कैरट में? वह गज में नपेगा या सेंटीग्रेड में? और उसे नापने के यंत्र क्या होंगे? स्पीडोमीटर या लाइटमीटर? औसिलोग्राफ या हाइग्रोमीटर? क्या है उसकी ऊंचाई या मोटाई? लम्बाई या चौड़ाई? ईश्वर की परिधि या परिमा क्या है? कहते हैं वह एक ऐसा वृत्त है कि जिसका केन्द्र सभी जगह है और परिधि कहीं नहीं. ईश्वर की बिस्वा में नपाई करें या प्रकाश वर्षों में? इसे बैरल में देखें कि गैलन में? ईश्वर का आयतन क्या है? क्या इसका कोई स्वनांक है या क्वथनांक या गलनांक? ईश्वर की वेलोसिटी क्या है? ईश्वर हैंडी साइज में मिलेगा या पॉकेट साइज में? तौल करेंगे उसकी? धरम कांटे से काम लेंगे या स्प्रिंग बैलेंस से?

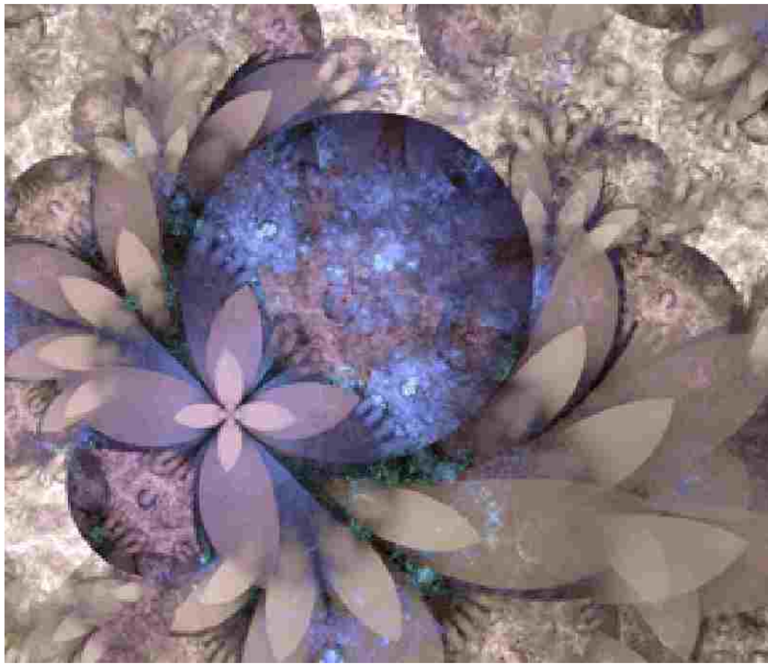

ईश्वर का ऍटोमिक वैट क्या होगा? और क्षेत्रफल? तुलसी कहते हैं कि ईश्वर का कोई परिमाप नहीं है, कोई परिमाण नहीं है. जब उसकी कोई प्रमिति नहीं है, जब वह मापातीत है तो बस 'मति अनुमान' मात्र ही आपके बस में है. लेकिन तब क्या वह भी व्यर्थ नहीं है? यदि ईश्वर एक ज्योति भी है तो भी कोई इल्यूमिनोमीटर या फोटोमीटर काम नहीं आएगा. यदि ईश्वर ॐ जैसी कोई ध्वनि भी है तो भी कोई सोनोमीटर हमारी मदद नहीं करेगा. ईश्वर की निरामयता और शून्यता में, उसकी अनाद्यंतता और निर्गुणता में ही उसकी अप्रमेयता है. कबीर ने इसीलिए तो कहा था : भारी कहौं तो बहु डरौं/हल्का कहूँ तो झूठ..

लेकिन तुलसी राम को अप्रमेय क्यों कह रहे हैं? राम तो सगुण हैं और साकार, राम तो सशरीर हैं, सावयव. राम तो गोचर हैं और समूर्त भी. राम के कलेवर और काया पर, राम के वर्ण और वपु पर, राम के विग्रह और छवि पर मुग्ध कवि तुलसी ने स्वयं पृष्ठ पर पृष्ठ भरे हैं. फिर सुन्दरकांड की शुरुआत में ही तुलसी उन्हें अप्रमेय क्यों बोल रहे हैं? क्योंकि वे जानते हैं और हमें भी पुनः स्मरण कराते हैं कि इस अंगी के भीतर एक अंगहीन है. इस कायिक के भीतर एक अकाय है. इस देही के भीतर एक देहातीत है. सारिपुत्र को हृदय सूत्र में बुद्ध यही समझाते हैं : ओ सारिपुत्र, रूप शून्य से भिन्न नहीं है और शून्य रूप से भिन्न नहीं है. रूप शून्य है और शून्य रूप है. कोई आँख, कान, नाक, जीभ, रूप, ध्वनि, गंध, आस्वाद, स्पर्श या मानस वस्तु, कोई तंत्र का क्षेत्र नहीं जब तक कि हम चेतना के अक्षेत्र में नहीं आ जाते. राम की प्रमा नहीं, राम की प्रभा पर मन को एकाग्र करो. राम की समीकृति (इक्वेशन) पर नहीं, राम की कृति पर चित्त धरो. राम कोई गणितीय प्राप्तांक नहीं है. ईश्वर के साथ हिसाब-किताब नहीं चलता. ईश्वर जोड़-जुगाड़, जोड़-तोड़ नहीं है. ईश्वर योग है. ईश्वर घटान नहीं है. घटघटवासी है. ईश्वर क्षयन नहीं है, अक्षय है. ईश्वर बाकी नहीं है, बैलेंस है. ईश्वर गुणा नहीं है, गुणी या गुणातीत है. ईश्वर भागफल नहीं है, भाग्यफल है. भाग नहीं, महाभाग. ईश्वर अंक नहीं है, अक्षर है. ईश्वर संख्या नहीं है, सांख्य है. ईश्वर रैम (रैंडम एक्सेस मेमोरी) या रौम (रीड ओनल मेमोरी) नहीं है, राम है. रमे हैं रोम रोम में राम. ईश्वर कूट्टक (अलजब्रा) नहीं है, कूटस्थ है. त्रिकोणमिति नहीं त्रिधामा, त्रिप्रद, त्रिलोकेश, त्रिविक्रम और त्रिनाभ है. क्षेत्रमिति नहीं, क्षेत्रज्ञ है. अल्गोरिद्म नहीं, रिद्म है. इस जगत् की लय है. पंजी नहीं, पर्जन्य है. कैश नहीं केशव है. वह न अंक है न दशमलव, शून्य है. उसे कैसे कैलिब्रेट करेंगे? ईश्वर में क्या जोड़ा जा सकता है? ईश्वर से क्या घटाया जा सकता है? ईशावास्य उपनिषद् ने यही कहा था न :-

'पूर्णात्पूर्णमुदच्यते पूर्णमेवावशिष्यतेः.'

इस कारण तुलसी अपने राम को अपरिसमाप्य और अपरिमेय कहते हैं. वे जानते हैं कि उनके भगवान की कोई मापतौल नहीं है. वे जानते हैं कि उनके सिलसिले में सारे पैमाने अपर्याप्त हैं. उस अक्षधर को कौनसे अक्ष में तौला जाएगा? जगत के डंडीमार और अंटीबाज़ राम का भजन करेंगे? बिना विजन के यह वजन हो जाएगा? हिसाब का कितना ही बड़ा प्रताप उस प्रज्ञापारमिता की थाह ले पाएगा? हमारी बंटी हुई (डिस्क्रिमिनेटिव) और द्वैतमूलक (डुअलिस्टिक) विज्ञान पद्धति से क्या वह कभी जाना जा सकेगा? परिमाप के हमारे सारे प्रयत्नों को क्वांटम मैकेनिक्स का एक संभाव्यता-मेघ (Probability cloud) ही मिला है, और क्या? शैक्षणिक मठाधीशों के कुर्सी बैठ दर्शन, उसके प्रमेय और सिद्धांतों से क्या कभी उसे सिद्ध किया जा सकेगा? वह हमारी अवधारणात्मक सरहदों के विलय (dissolution) का इंतजार करता है. हमारे हठ, डॉग्मा और हमारी पूर्वधारणाएं जो भी हमारी दृष्टि को बोतलबन्द करना चाहेंगी, वे इस दृष्टा का क्या दीदार करेंगी? जॉन गिल ने कहा था- ""When we say that God is infinite, the meaning is that he is unbounded and unlimited, unmeasurable or immense, unsearchable and not to be comprehended" (A Body of doctrinal and Practical Divinity)"

प्रज्ञापारमिता सूत्र की शुरुआत में ही बुद्ध कहते हैं कि महायान पर्याय है अप्रमेयता (immeasurability) का, जो पर्याय है अनंत का (विष्णु का एक नाम अनन्तशीर्ष/अनंत भी है) जिसका पर्याय है उत्सवीयता (ineffability). इस सूत्र के अनुवाद में आगे चलकर कहा गया है : Omniscience cannot be grasped. By its very allness, it is

> *उस अगम्य और अगाध को, उस अविज्ञेय और अवेद्य के लिए क्या किसी प्रमेय की निर्धार्यता निराधार ही होगी? उसकी अनिवर्चनीयता वस्तुतः उसकी गुणातीतता है. लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि ईश्वर के संबंध में साइंस बेकार है और अंधविश्वास ठीक है? उस बोधातीत के लिए बुद्धू ठीक है? वहां उत्कंठा और उत्सुकता, जिज्ञासा और पृच्छा नहीं चलेगी, कूपमंडूकता व अंधकार चलेगा?*

precluded from possessing any particular mark, sign or limit which the mind might cognize or even attempt to cognize. If total awakenness manifested a sign by which it could be defined, discriminated and separately encountered, it would not be total.....The omniscience or total awakenness of Buddhahood can simply not be located or formulated ....Rather than infinity of number or infinity of extension in space and time, this transparent depth of unthinkability is the true and perfect infinitude. अप्रमेय से तुलसी भी उसी अधार्यता (Inconceivability) की ओर संकेत करते हैं. लेकिन परिमा या परिमाण के अंतहीन होने के सवाल को वैज्ञानिक चुनौतियां भी मिली हैं. ऐन रैंड ने अपनी पुस्तक 'इंट्रोडक्शन टू ऑब्जेक्टिविस्ट एपिस्टेमोलोजी' में किसी अपरिमेय सत्ता के होने के सवाल को ही चुनौती दी है. उनके तर्क इस प्रकार क्रमबद्ध किए जा सकते हैं :

१. प्रत्येक चीज़ जिसका अस्तित्व है, उसका अस्तित्व किसी के संबंध में ही है.

२. इस विशिष्ट संबंध की पहचान (Identification) और मात्रांकन (quantification) ही माप (measurement) है.

३. प्रत्येक अस्तित्ववान का ऐसा कोई रिश्ता या रिश्ते होते हैं जिन्हें मापा जा सकता है.

४. मापयोग्य संबंध तब भी होते हैं जब माप की कोई विशिष्ट पद्धति या मानक उस मामले में तब तक विद्यमान भी नहीं हो, आविष्कृत भी नहीं हो और एकदम ठीक प्रिसीजन का स्तर उसमें उपलब्ध भी नहीं किया जा सका हो.

५. अतः अप्रमेय होने का अर्थ है कि वस्तुतः आपके किसी से कोई संबंध नहीं हैं.

६. एक चीज़ जो संबंधविहीन हो, वह अस्तित्ववान भी न होगी.

७. अतः अप्रमेय चीज़ का अस्तित्व हो नहीं सकता.

लेकिन ऐन रैंड उस सर्वज्ञ, सर्वांतर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वतोमुख के संबंध में अपनी विलक्षण तर्कपद्धति में भूल यह करती हैं कि वे यह नहीं बतातीं कि 'किसी' संबंध वाली हस्ती के बारे में जो तर्क लागू हो सकते हैं वे ही तर्क किसी 'सर्व' संबंध वाली हस्ती पर कैसे लागू किए जा सकते हैं? पहले इस सर्वतोमुख और सर्वदर्शी की चुनौती को ठीक-ठीक समझ लें. यह वह अखिलेश है जिसके बारे में कहा गया है :- Wherever there is a where, God is there. यह वह ईश्वर है जिसे तथ्यों का संग्रह नहीं करना पड़ता. इस ईश्वर के

ईश्वर को अनन्तरूपाभिधेय बताकर उसे किसी भी संकीर्णता से ही नहीं मुक्त किया गया बल्कि किसी भी रूप-विशेष को किसी प्रिविलेज या विशेषाधिकार से मुक्त किया गया. इसके चलते न कोई जाति किसी के ऊपर प्रिविलेज का दावा कर सकती है, न कोई रेस और न स्वयं मनुष्य ही.

बारे में बाइबिल के साम-गान में कहा गया : He doth not know one thing now, and another anon, he sees all things at once. जब वह सभी कारकों और चरों से, चराचर से एक साथ एक समय से सभी समय तक संबद्ध है तब इतने अंतहीन चरों का मापन कैसे होगा? यह ठीक है कि ईश्वर सबसे कटकर एकांतवास नहीं करता. ईश्वर संबंध में है. लेकिन उसका वैशिष्ट्य यह है कि उसके संबंधों की डोर पूरे अग-जग से है. हमारे शरीर में आँख भी है, पैर भी किन्तु क्या हम कह सकते हैं कि हमारी आत्मा हमारे शरीर के किसी अंग विशेष में ही है? ठीक उसी तरह से ईश्वर की इस सृष्टि में उसका रस (एसेंस) कहां नहीं मानें? माप के लिए किसे छोड़ें, किसे पकड़ें? कौनसी चीज़ है जो ईश्वर के परिपथ (सर्किट) को सीमित (रेस्ट्रिक्ट) करती है? वह जो स्वयंप्रभु, स्वयंभू और स्वयंप्रकाश है, उसके चिद्विलास के किस अंश को अप्रासंगिक मानें? उस अनंताभिधेय के ऐश्वर्य की, उस अमृतगर्भ की लीला की परिसमाप्ति कहां है कि जहां से हमारा स्केल शुरू हो? भगवान सारी परिसीमाओं और सरहदों (बाउन्ड्रीज़) से स्वतंत्र है. ब्रह्म शब्द संस्कृत की जिस धातु ब्रिह से बना है उसका अर्थ है बढ़ना, ग्रो करना यानी यह यथार्थ डायनेमिक है, जीवंत है. ऋग्वैदिक शब्द ऋत का अर्थ 'रि' धातु से समझा जाना चाहिए. 'रि' माने मूव करना. अब यदि ब्रह्म और ऋत गत्यात्मक हैं तो वे जड़ता को प्रोत्साहन कैसे दे सकते हैं? बुद्ध ने यही कहा था : सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो- कि यह समूचा लोक (यूनिवर्स) प्रज्ज्वलन और प्रकंपन के सिवा कुछ नहीं है. यदि विश्व गति कम्पन और नर्तन में व्याख्यायित होता है तो वह किसी जड़ प्रगति-विरोधी तमस में जीवित नहीं रहेगा. तब विकास (इवॉल्यूशन) कोई ऐसा शब्द नहीं है जो जैविकी (बायलॉजी) तक सीमित हो. वह इस जगत की विविध शक्तियों की ओर भी इंगित करता है. जब तक ब्रह्म तक एक जड़ विचार (फिक्स्ड आइडिया) नहीं है तो जितना वो गत्यात्मक है, उतना वो अप्रमेय है, उतना वो हमें कट्टरता से मुक्त करता है.

व्याख्या

ईश्वर की अज्ञेयता (incomprehensibility) की बाइबिल के अनुसार व्याख्या यह है कि "Incomprehensibility ariseth from an infinite perfection which cannot be fathomed by the short line of man's understanding' उस अगम्य और अगाध को, उस अविज्ञेय और अवेद्य के लिए क्या किसी प्रमेय की निर्धार्यता निराधार ही होगी? उसकी अनिवर्चनीयता वस्तुतः उसकी गुणातीतता है. लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि ईश्वर के संबंध में साइंस बेकार है और अंधविश्वास ठीक है? उस बोधातीत के लिए बुद्धू ठीक है? वहां उत्कंठा और उत्सुकता, जिज्ञासा और पृच्छा नहीं चलेगी, कूपमंडूकता व अंधकार चलेगा? भगवान ज्ञानेश्वर को मिलता है कि मूढ़ को मिलता है? वह अजस्र है और अगाध भी. लेकिन वह तुक्के और बुझक्कड़ी का विषय तो नहीं. ज्ञान की गतिकी (डायनेमिक्स) में तो अर्हंत की ही अर्हता है. वहां तो प्रज्ञात्मा ही परमात्मा तक पहुंच पाता है. इसलिए नहीं कि उसका ज्ञान परमात्मा को विमोचित (डिकोड) कर सकेगा बल्कि इसलिए कि इस लक्ष्य के प्रति उसकी ज्ञानात्मक संवेदना में ईमानदारी है. तो ईश्वर मूर्ख की मनोसृष्टि नहीं है, न किसी लाइल्म की फ़ंतासी. ज्ञानात्मक संवेदना की परिशुद्धता और एकाग्रता का ईश्वर के यहां तिरस्कार नहीं हो सकता, और न अविद्या का महांधकार ईश्वर के सान्निध्य में बचा रह सकता है. गुणातीत गुणी की बेकद्री करे और अगुणी की प्रतिष्ठा करे तो वह कलियुगी सत्ताधीश हुआ, ईश्वर नहीं. डी.सी. मैकिन्टोश की पुस्तक Theology as an Empirical Science याद आती है और याद आते हैं शिकागो विश्वविद्यालय के शैलर मैथ्यूज और एच.एन. वीमैन जिन्होंने वैज्ञानिक विश्वदृष्टि में ईश्वर को कहीं फिट करना चाहा. विज्ञान ईश्वर के विरुद्ध नहीं है. विज्ञान ईश्वर की दिशा में ही उठा हुआ क़दम है. लेकिन जैसा कि आजकल के संकट धर्मशास्त्री (Crisis Theologists) कहते हैं कि God is not an object to be known scientifically but is nevertheless the great self-revealing reality, to be encountered and obeyed.

अप्रमेय का एक और आयाम है. ईसाई मान्यता यह है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपने रूप में रचा. लेकिन इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य की 'इमेज' ईश्वर की प्रतिनिधि है. तब अन्य प्राणियों का क्या? क्या वे ईश-स्वरूप के प्रतिनिधि नहीं हैं? भारतीय जीवनदृष्टि इससे भिन्न है. ऋग्वेद (६/४७/१८) में कहा गया : रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव कि परमात्मा ने प्रत्येक रूप के अनुरूप अपना रूप बना लिया. यह दृष्टि जीवन के वैविध्य और ईश्वर के अप्रमेयत्व की ज्यादा अच्छी तरह से स्थापना करती है. यहां तक कि स्वयं मनुष्य की कोई एक स्थिर छवि नहीं है. अरविंद (सावित्री ७/६) कहते थे :- Many are God's forms by which He grows in man. इसलिए रूप की दृष्टि से भी एक अप्रमेयता है. ईश्वर को अनन्तरूपाभिधेय बताकर उसे किसी भी संकीर्णता से ही नहीं मुक्त किया गया बल्कि किसी भी रूप-विशेष को किसी प्रिविलेज या विशेषाधिकार से मुक्त किया गया. इसके चलते न कोई जाति किसी के ऊपर प्रिविलेज का दावा कर सकती है, न कोई रेस और न स्वयं मनुष्य ही. ■

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

Contribute just Rs. 2750*
and send one child to school
for a whole year

Central & General Query
info@smilefoundationindia.org
http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

बृजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत. जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला के अतिथि अध्यापक.

सम्पर्क : अपरा ज्योतिषम, २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

चिन्तन

शकुन और लक्षण

बहुत से व्यक्ति घर से बाहर निकलते समय अथवा यात्रा पर जाते समय अपने सामने बाएँ-दाएँ किसी पक्षु-पक्षी के स्वर या उसकी चेष्टा आदि को सुन देखकर अपने काम के बनने बिगड़ने का जब पूर्वानुमान लगाते हैं तो वह कहते हैं कि पशु-पक्षी के बाएँ-दाएँ आने या इस प्रकार का स्वर करने से उन्हें काम बनने का शुभ शकुन हुआ या नहीं बनने का अप शकुन हुआ.

> *पशु पक्षियों में देखने सुनने की क्षमता मनुष्य की तुलना में बहुत अधिक होती है और उसका स्वरूप भी कुछ विचित्र होता है. इसे ही कभी कभी उनकी छठी इन्द्रिय कह दिया जाता है.*

शकुन शास्त्र में पशु-पक्षियों की चेष्टाओं और विभिन्न स्वरों का जब भविष्य कथन की दृष्टि से उपयोग किया जाता है तब इन्हें शकुन कहते हैं. ऐसे दिखने वाले पशु पक्षी को शाकुन कहते हैं. वैसे शकुन एक पक्षी का भी नाम है. सम्भव है उसी के नाम से शकुन सगुन-असगुन बने हों.

स्पष्ट है शकुन देखा सुना गया संकेत मात्र है जिसका अपना स्वयं का कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं होता. इसका अर्थ तो व्यक्ति अपनी परम्परा, शास्त्र ज्ञान या अनुभव के अनुसार निकालता है. इसलिए व्यक्ति विशेष या क्षेत्र विशेष के अनुसार किसी एक ही शकुन का अलग-अलग अर्थ हो सकता है और होता भी है.

शकुन से भविष्य कथन की परम्परा प्रत्येक जाति धर्म व देश में पाई जाती है जिसमें सगुनिया या शकुन बूझने वाले सयाने या विशेषज्ञ से लेकर लाल बुझक्कड़ तक सभी का अपना-अपना स्थान रहता आया है. इतना होने पर भी शकुन को अधिकतर निजी विश्वास या अंधविश्वास कहकर खारिज कर दिया जाता है.

प्रश्न है क्या शकुन वाकई अंध विश्वास है ? तथ्य तो यह है कि समाज शास्त्रियों ने व्यक्ति की शुभाशुभ घटना का आधार शकुन मान लिया और तर्क दिया की चूँकि पशु-पक्षी की स्वर-चेष्टाएं निरन्तर होती रहती हैं इसलिए वे किसी व्यक्ति विशेष के लिए शुभ-अशुभ कैसे हो सकती हैं. बात ठीक लगती है क्योंकि यदि कुत्ते के बाएँ से दाएँ जाने पर यदि किसी का काम बना तो फिर हर व्यक्ति का काम क्यों नहीं बनता ?

थोड़ा गहराई में जाने पर हम देखते हैं कि इसका समाधान शकुन शास्त्र में ही दिया गया है कि शकुन स्वयं न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे, वे किसी का अच्छा बुरा नहीं कर सकते. व्यक्ति के स्वयं के शुभाशुभ कर्म ही शकुन के माध्यम से प्रकाशित होते हैं, छठी सदी के प्रतिष्ठित ग्रंथ बृहत्संहिता के शकुन अध्याय में कहा गया है और जिसे प्रश्न मार्ग अध्याय ३ में भी दोहराया गया है :

अन्य जन्मान्तर कृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम्,
यत् तस्य शकुन पाकं निवेदयति गच्छताम्।।५।।

व्यक्ति के पूर्वजन्मों में किए गए अच्छे बुरे कर्म ही उसके कहीं जाते समय शकुन के रूप में दिखाई देते हैं.

कोई समझदार प्रश्न कर सकता है कि पशु-पक्षी को मार्ग में आने जाने वाले व्यक्ति के जन्मजन्मातर के संचित और अब घटित होने को तैयार कर्म कैसे ज्ञात हो सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि पक्षी आदि जीव का अपना व्यवहार स्वतंत्र होता है और व्यक्ति का भविष्य भी उसका निजी होता है दोनों एक-दूसरे को प्रभावित या सृजित नहीं करते यह तो काल है जो दोनों को एक साथ जोड़ देता है.

यह तो आज के वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं कि संपूर्ण विश्व के समस्त जड़ और चेतन एक-दूसरे से जुड़े हैं व एक अविभाजित इकाई हैं अन डिफरेंशिएटेड होल (undifferentiated whole) हैं. इसलिए यदि हम किसी क्षण विशेष की एक छोटी सी भी घटना को जानते हैं तो उसके आधार पर उसी क्षण से जुड़ी अन्य बड़ी घटना को भी बता सकते हैं जो भविष्य में घटित होगी. इस प्रकार छोटी घटना शकुन से बड़ी घटना अर्थात् व्यक्ति का भविष्य बताया जा सकता है.

शकुन का इस प्रकार प्रबल सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आधार है तथा इसे विश्वास या अंधविश्वास कहकर नकारा नहीं जा सकता. आवश्यकता इस बात की है कि यदि शकुन को भविष्य कथन की कई विधियों की तरह एक विधि मानना है, जो कि यह है भी, तो इसका गहराई से अध्ययन करके ही कुछ कहना चाहिए. किसी भी अन्य तकनीक या कला की तरह शकुन शास्त्र के भी नियम हैं जो बहुत जटिल हैं समय साध्य हैं तथा तीव्र बुद्धि की तथा सूक्ष्म निरीक्षण की अपेक्षा रखते हैं.

आइए थोड़ी उड़ती नजर शकुन शास्त्र पर डाली जाए. शकुन शास्त्र में पशु-पक्षी सात तरह के माने गए हैं- जलचर, नभचर, थलचर, उभयचर, दिनचर, रात्रिचर, वनचर. इनके स्त्री पुरुष नपुंसक तीन प्रकार हैं इनमें से प्रत्येक की शब्द चेष्टा का अर्थ सुबह दोपहर शाम को, अलग-अलग होता है, दूर होने पर अलग तथा पास होने पर अलग, आठों दिशाओं के अनुसार अलग-अलग होता है. बाएँ दाएँ, उपर-नीचे के हिसाब से अलग अर्थ होगा. यदि आप सांख्यिकी के विद्यार्थी रहे हैं तो अन्दाज लगाइए कि एक शब्द चेष्टा या शकुन के कितने रूप हो जाते हैं और इन्हें समझने में कितनी योग्यता व समय चाहिए?

शकुन का उपयोग "केरल प्रश्न पद्धति" में विशेष किया जाता है जिसमें प्रश्न समय की जन्म पत्रिका या अंक आदि लिखने के बाद तत्काल के शकुन ज्ञान हेतु पशु-पक्षी मनुष्य प्रकृति सभी का व्यवहार देखा जाता है. बन्दी मुक्त होगा या नहीं इस प्रश्न का उत्तर देते समय शिष्य ने तात्कालिक शकुन देखा कि एक स्त्री पानी का घड़ा ला रही थी वह घड़ा गिरकर टूटने से पानी जमीन पर फैल गया. शिष्य ने इसे अपशकुन माना. इस पर गुरू ने कहा कि जल तो घट में बंदी था जो मुक्त होकर फिर से वापस पृथ्वी में चला गया इसलिए प्रश्न बन्दी मुक्ति का होने से यह शकुन शुभ है बन्दी भी मुक्त होगा. इस कथा से शकुन की व्याख्या किस प्रकार बदल सकती है इस पर अच्छा प्रकाश पड़ता है.

> *पहले जब चिट्ठी-पत्री का भी चलन कम था तब कौआ ही सम्बन्धी जन के आने का शकुन बताता था और उसकी चोंच सोने से मढ़वाने का भरोसा लोकगीतों में नायिकाएं दिलाया करती थीं.*

एक रोचक सवाल शकुन में उठाया गया है कि यदि व्यक्तियों के समूह को कोई शकुन दिखाई सुनाई दे तो किस पर असर होगा? इसका उत्तर दिया गया है कि प्रधान पर, यदि कई प्रधान हो तों जाति अनुसार, जातियों में साम्य हो तो विद्या के अनुसार विद्या में साम्य हो तो उनमें बड़े पर शकुन का फल होगा.

इसी प्रकार कहा गया है कि दिन के समय शकुन रात में मान्य नहीं व रात के दिन में मान्य नहीं. रोगी, कलहकारी,

ऋतुकाल के वश में पशु पक्षियों के शकुन भी मान्य नहीं. बसन्त ऋतु में कौआ और कोयल के, शिशिर ऋतु में गधा, घोड़ा के शकुन, भाद्रपद में कुत्तों के शकुन मान्य नहीं इत्यादि.

कहने का तात्पर्य यह है कि शकुन की व्याख्या जटिल कार्य है जबकि समाज में शकुन के लालबुझक्कड़ अधिक हैं. कहा जाता है कि लालबुझक्कड़ बहुत सीधे सादे थे पर उनकी एकाध बात ठीक बैठ जाने से उन्हें विद्वान मान लिया गया तब तो वे भी विद्वानों की तरह हर बात का कोई न कोई मतलब निकाल दिया करते थे. एक बार गाँव से होकर रात में हाथी निकल गया. सुबह जब गांव वालों ने हाथी के पैरों के निशान देखे तो लालबुझक्कड़ को बुला लाए तब उन्होंने फरमाया :

लालबुझक्कड़ बूझते और न बूझे कोय,
पैर में चक्की बांध के हिरना कूदा होय.

शकुन का असर लोकगीतों में भी देखा जाता है. पहले जब चिट्ठी-पत्री का भी चलन कम था तब कौआ ही सम्बन्धी जन के आने का शकुन बताता था और उसकी चोंच सोने से मड़वाने का भरोसा लोकगीतों में नायिकाएं दिलाया करती थीं. अब मोबाइल के जमाने में बेचारे सगुनिए कौवे को कोई पूछता ही नहीं. उल्लू को शकुन में अच्छा नहीं माना जाता. इसी को लेकर एक शेर का एक मतला कुछ इस तरह कहा जाता है 'हर शाख पे उल्लू बैठा है अंजामे गुलिस्ताँ क्या होगा.' गोया वे हर शख्स को उस तरह का उल्लू मानते हैं और खुद को गुलिस्ताँ का मालिक.

चूँकि शकुन की परिस्थिति हर बार नयी होती और व्यक्ति सापेक्ष होती है इसलिए बेहतर होगा कि शकुन दिखने पर उसकी ओर ध्यान ही नहीं दें तथा अपने मनोबल को ऊँचा बनाए रखने का अभ्यास करें जो गुरुजन व अपने-अपने भगवान के स्मरण से प्रबल होता है. वैसे भी शकुन हो या मुहूर्त्त सभी में मन की प्रसन्नता ही सबसे प्रबल मानी गई है तथा कार्य सिद्धि में यही सच्ची सहायक होती है.

लक्षण : यह तो हुई शकुन की बात जो पशुपक्षियों के व्यवहार पर आधारित होता है. इसी प्रकार जब हम व्यक्ति या व्यक्ति समूह के आचार व्यवहार की तात्कालिक या लंबे अरसे तक जांच परख करते हैं तब हम उसे लक्षण कहते हैं. किसी बेटी की बुद्धि व्यवहार देखकर हम कह सकते हैं इसके लक्षण तो लक्ष्मी जैसे हैं बड़ी होकर रानी जैसा राज करेगी. यहां भी हम भविष्य कथन करते हैं जो व्यक्ति के हाव भाव, आचरण स्वभाव, शारीरिक लक्षण आदि कई बातों पर निर्भर होता है.

महाभारत में अर्जुन कहते हैं, मैं भ्रमित हूँ और ठीक से खड़ा भी नहीं हो सकता. केशव! मैं यहां केवल विपरीत निमित्त ही देख रहा हूँ : **निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव.**

आज के वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं कि संपूर्ण विश्व समस्त जड़ और चेतन के साथ एक-दूसरे से जुड़े हैं अविभाजित इकाई हैं अन डिफरेंशिएटेड होल हैं. इसलिए यदि हम किसी क्षण विशेष की एक छोटी सी भी घटना को जानते हैं तो उसके आधार उसी क्षण से जुड़ी अन्य बड़ी घटना को भी बता सकते हैं जो भविष्य में घटित होगी. छोटी घटना शकुन से इस प्रकार बड़ी घटना अर्थात् व्यक्ति का भविष्य बताया जा सकता है.

निमित्त का यहां अर्थ लक्षण है अंग्रेजी में इसे पोर्टेन्ट Portent कहेंगे. निमित्त या लक्षण इस प्रकार शकुन के ही विस्तारित रूप हैं. अपने शरीर के वाम या दक्षिण अंग फड़कना भी शकुन कहे जाते हैं पर यदि निरन्तर हों तो इनका कारण वात व्याधि भी हो सकता है. अंग्रेजी में कहावत है 'गैस्चर्स स्पीक लाउडर देन वडर्स' अर्थात् व्यक्ति के हाव-भाव, उठने-बैठने के ढंग से, उसकी वाणी के मुकाबले, व्यक्ति के बारे में अधिक बातें पता चलती है. इसी आधार पर एक पुस्तक How to Read a Person Like a Book लिखी है Gerald Nierenberg –Henry H. Calero ने.

अब हम वापस पशु पक्षियों के व्यवहार पर आश्रित शकुन पर चलते हैं तथा इसके दूसरे रूप की चर्चा करेंगे जो व्यक्ति के स्थान पर, प्राकृतिक घटनाओं की पूर्व सूचना देते हैं.

शकुन से प्राकृतिक घटनाओं का भविष्य कथन : क्या पशु पक्षियों के व्यवहार से वर्षा, तूफान भूकम्प आदि प्राकृतिक घटना प्रकोप की या सुखद मौसम की भविष्यवाणी की जा सकती है? यहां प्रभाव क्षेत्र प्रकृति होने से यह व्यक्ति की तुलना में बहुत व्यापक है और वस्तुनिष्ठ भी है इसलिए इसका अध्ययन अपेक्षाकृत आसान है. इस पर कई तरह के वैज्ञानिक प्रयोग किए भी जा रहे हैं. पशु पक्षियों में देखने सुनने की क्षमता मनुष्य की तुलना में बहुत अधिक होती है और उसका स्वरूप भी कुछ विचित्र होता है. इसे ही कभी कभी उनकी छठी इन्द्रिय कह दिया जाता है.■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्विन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेल: prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

यत् ते भूमे विखनामि
क्षिप्रं तदपि रोहतु
म ते मर्म विमृग्वरी
मा ते हृदयमर्मिपम्।३५।

भूमि तुझमें बीज जो बोयें
बहुत जल्दी उगें
अप्रतिहत मर्मस्थलों पर सदा
सदा ही न हो दुखी उर हमारा
कभी भी.

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि
शरद्धेन्मन्तः शिशिरो वसन्तः
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे
पृथिवि नो दुहाताम्।३६।

ग्रीष्म, वर्षा, शरद
शीत, मधु, हेमन्त ऋतुयें
सृष्टि में तुमने भरीं
रात-दिन अतिरिक्त
सुखप्रद सदा ही हों सभी.

याप सर्प विजमाना विमृग्वरी
यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः
परा दस्यून ददती देवपीयूनिन्द्रं
वृणाना पृथिवी न वृत्रम्
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे।३७।

शोध्य वसुधा
परम विस्तृत
प्रकंपित गति
गगन की तड़ित माला
तुम्हारी है हृदय ज्वाला
देव पीड़क, हिंस्र अरि के नाशकर्ता
इन्द्र, सुरपति, विष्णु, शिव
सबको
तुम्हीं तो धारती हो.

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे।३८।

भूमि वह जिसमें हविर्धा है
यूप मख के जहां सुस्थित
साम, ऋक्, यजु आदि वेदों से
जहां पर ब्राह्मण हैं यजन करते
जहां ऋत्विज सोमरस का पान करने
अर्चना रत सदा हैं देवेन्द्र की.

क्रमशः...

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

विषय : पुरुष और प्रकृति

कार्य-करण-कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।

गीता १३-२०

क्या कार्य होगा, किस साधन के द्वारा होगा और उसका कर्ता कौन होगा, इसमें हेतु प्रकृति होती है. सुख-दुःख को भोगने में हेतु पुरुष होता है. जगत् में सभी कर्मों का आधार प्रकृति है, अनुभूतियों का आधार पुरुष है.

वही एक पुरुष सभी प्राणियों की चेतना में परिलक्षित हो रहा है. सब प्राणियों के सुख-दुःख आदि की अनुभूतियाँ उसी पुरुष के चैतन्य का परिवर्तित रूप हैं. इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर भोक्ता के रूप में वही एक पुरुष विद्यमान है. किन्तु पुरुष स्वयं कुछ कार्य नहीं करता. जगत् में सारे कार्य प्रकृति के द्वारा होते हैं जो सदा पुरुष के साथ रहती है. इसी बात को इस प्रकार कहा जाता है कि शक्ति के बिना शिव, लक्ष्मी के बिना विष्णु और राधा के बिना कृष्ण अपूर्ण हैं. संपूर्ण विश्व में चैतन्य और उसकी ऊर्जा सर्वत्र साथ-साथ विद्यमान हैं. हमारी अनुभूति के रूप में चैतन्य प्रकट होता है और क्रिया के रूप में उसकी ऊर्जा (प्रकृति) प्रकट होती है.

कार्य-करण-कर्तृत्वे : कार्य, करण और कर्तृत्व में, **प्रकृतिः हेतुः उच्यते :** प्रकृति को हेतु कहा जाता है. **सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे :** सुखों और दुःखों के भोक्ता होने में, **पुरुषः हेतुः उच्यते :** पुरुष को हेतु कहा जाता है.

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।

गीता ३-३३

ज्ञानी व्यक्ति भी अपनी प्रकृति के अनुसार ही चेष्टा करता है. सभी प्राणी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करते हैं. इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को दबाने का प्रयत्न व्यर्थ है.

इस संसार में विभिन्न मनुष्य जो भी कुछ करते हैं वह उनके अहंकार, मन और इन्द्रियों के प्रकार पर निर्भर करता है. यदि कोई व्यक्ति राजसिक मन लेकर पैदा हुआ है तो वह तब तक अशान्त जीवन बिताएगा जब तक कि प्रकृति के नियम के अनुसार उसका विकास शान्त सत्त्वगुण की अवस्था तक न हो जाए. हम ज़बर्दस्ती न तो किसी और के स्वभाव को बदल सकते हैं, न अपने स्वभाव को. न ज्ञानी व्यक्ति के स्वभाव को बदला जा सकता है न अज्ञानी के. यह अंतर्दृष्टि हमें औरों के प्रति सहिष्णु बनने में सहायता करती है. साथ ही, इससे हमें स्वयं अपने प्रति सहिष्णु बनने में भी सहायता मिलती है. यह दूसरा काम कभी-कभी ज़्यादा कठिन हो सकता है.

ज्ञानवान् अपि : ज्ञानी मनुष्य भी, **स्वस्याः प्रकृतेः सदृशं :** अपनी प्रकृति के अनुसार ही, **चेष्टते :** चेष्टा करता है. **भूतानि प्रकृतिं यान्ति :** सब प्राणी अपनी प्रकृति पर ही जाते हैं. **निग्रहः :** उस प्रकृति को रोकने का प्रयत्न, **किं करिष्यति :** क्या करेगा.

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानम् अकर्तारं स पश्यति।।

गीता १३-२९

सभी कर्म प्रकृति के द्वारा ही किए जा रहे हैं. जो इस बात को जानता है वह अपने आपको अकर्ता के रूप में देखता है.

हमारे शरीर के अंदर और बाहर अनेक प्रकार की गतिविधियाँ चल रही हैं. इनमें हमारे मस्तिष्क की गतिविधि भी शामिल है जिससे हमारे विचार उत्पन्न होते हैं. हमारे अंदर और बाहर जो कुछ भी हो रहा है यदि हम उससे अपने आपको अलग कर सकें तो हम देखेंगे कि हमसे कोई बड़ी शक्ति है जो सभी गतिविधियों का संचालन कर रही है. इनमें हमारी चित्त की हलचल भी शामिल है. जो काम हमें लगता है कि हम अपने मन और इन्द्रियों के द्वारा कर रहे हैं वह वास्तव में प्रकृति के द्वारा किया जा रहा है. हमारा मन और इन्द्रियाँ भी उस प्रकृति के अंग हैं. हमारी व्यक्तिगत चेतना (चित्त) इस खेल का हिस्सा है, पर हमारे अंतरतम में विद्यमान शुद्ध चैतन्य सदा केवल द्रष्टा ही रहता है.

यः : जो मनुष्य, **कर्माणि :** सभी कर्म, **सर्वश :** सभी प्रकार से, **प्रकृत्या एव :** प्रकृति के द्वारा ही, **क्रियमाणानि :** किए जा रहे हैं, इस बात को, **च तथा :** उसी प्रकार, **आत्मानम् अकर्तारम् :** अपने आप को अकर्ता के रूप में देखता है, **सः पश्यति :** वही वास्तव में देखता है.

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।

गीता १४-५

हे अर्जुन, सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और ये देह में रहनेवाली अमर आत्मा को बाँधे रहते हैं.

पहले हम देख चुके हैं कि गीता के अनुसार इस संसार के दो मूल तत्त्व पुरुष और प्रकृति हैं. इनमें से प्रकृति सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से बनी है. जीव भी ईश्वर का ही अंश है. ऐसा होने से उसे सर्वथा मुक्त होना चाहिए था. पर वास्तव में ऐसा है नहीं. जीव देह में रहता है और देह का निर्माण प्रकृति से हुआ है. इसलिए जब तक जीव देह में है, वह प्रकृति के गुणों के बंधन में रहता है. यद्यपि अपने शुद्ध रूप में सभी जीवात्मा एक समान हैं, पर वे प्रकृति के गुणों के विभिन्न संयोगों से बने भिन्न-भिन्न शरीरों में रहते हैं. शुद्ध चैतन्य उनके शरीरों के अनुसार उनकी व्यक्तिगत चेतना के रूप में प्रकट होता है. अपने मूल रूप में शुद्ध चैतन्य अपने आपको किसी शरीर में प्रकट नहीं करता.

महाबाहो : हे अर्जुन, **प्रकृतिसंभवाः :** प्रकृति से उत्पन्न, **सत्त्वं रजः तमः इति गुणाः :** सत्त्व, रज, तम ये तीन गुण, **अव्ययं देहिनं :** अविनाशी आत्मा को, **देहे निबध्नन्ति :** देह में बाँधे रखते हैं.

■

जारी...

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता
गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैंनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.
सम्पर्क : om@ramacharit.org

कौन बनेगा रामभक्त

निम्न प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत श्री रामचरितमानस के आधार पर दीजिये.
सही उत्तर अगले अंक में प्रकाशित होंगे.

१. शिवजी का धनुष तोड़ने के लिए राम को किसने कहा?
अ) जनक
ब) लक्ष्मण
स) विश्वामित्र
द) सीता

२. इन घटनाओं का सही क्रम क्या है?
अ) अक्षय वध-लंका दहन-जटायु मरण
ब) लंका दहन-जटायु मरण-अक्षय वध
स) लंका दहन-अक्षय वध-जटायु मरण
द) जटायु मरण-अक्षय वध-लंका दहन

३. इनमें सबसे पहले किसका वध हुआ?
अ) रावण
ब) कुम्भकरण
स) मेघनाद
द) विभीषण

४. तिरहुत किसको कहते हैं?
अ) त्रिलोकी राम
ब) दसरथ
स) स्वर्ग
द) मिथिला

५. जब राम पंचवटी पहुंचे तब उनकी किस से भेंट हुई?
अ) जटायु
ब) अत्रि ऋषि
स) वाल्मीकि ऋषि
द) मारीचि

६. बालि वध के तुरंत बाद किस ऋतु का प्रारंभ हुआ?
अ) ग्रीष्म
ब) वर्षा
स) सर्दी
द) वसंत

७. राम जी को चित्रकूट बसने की राय किसने दी?
अ) वाल्मीकि मुनि
ब) लक्ष्मण
स) सीता
द) अत्रि ऋषि

८. 'षडानन' कौन थे?
अ) एक ऋषि
ब) शिव-पुत्र
स) एक दैत्य
द) ब्रह्मा का एक अन्य नाम

९. तुलसीदास जी ने रामचरितमानस को किस संवत में लिखना प्रारंभ किया?
अ) १७३१
ब) १६३१
स) १८४०
द) १००८

१०. 'महिसुर' शब्द का क्या अर्थ है?
अ) राक्षस
ब) राजा
स) इन्द्र
द) ब्राह्मण

प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

सितम्बर २०१२ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं :
१. स, २. ब, ३. स, ४. ब, ५. अ, ६. अ, ७. ब, ८. अ, ९. ब, १०. ब

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

नंगी क्या हँसे

किसी स्थान पर एक किसान अपनी जोरू के साथ रहता था. किसान बूढ़ा हो चला था और उसकी जोरू जवान थी. अपना काम चलाने के लिए वह दूसरे मर्दों के चक्कर में रहती थी. घर में उसके पांव टिकते ही नहीं थे. जब देखो तब इधर-उधर भटकती रहती थी.

एक बार जब वह बचकर घर से निकल रही थी, उसे किसी ठग ने देख लिया. वह उसके पीछे लग लिया और जब थोड़ा-सा एकांत मिला तो उसके पास जाकर बोला, 'सुंदरी, मेरी घरवाली मर चुकी है. आज तुम्हें देखते ही मेरा जी तुझ पर लट्टू हो गया. मैं तुम्हें अपनी बांहों में भरने के लिए तड़प रहा हूं. तुम मेरा मन रख दो और आज के लिए मेरी हो जाओ.'

> *नदी के पार पहुंचकर ठग उसके पैसे और साड़ी लेकर चंपत हो गया. इधर बेचारी किसान की जोरू अपने दोनों हाथों से अपनी लाज ढंके सिकुड़ी बैठी हुई उसके लौटने की राह देखती रही.*

किसान की जोरू ने कहा, 'यदि साथ ही करना है तो एक-दो घड़ी का क्या साथ. मैं तो तुम्हारे साथ सारी उम्र काट सकती हूं. मेरे घरवाले ने खूब सारा पैसा जोड़ रखा है. वह बूढ़ा है इसलिए अधिक हिल-डुल भी नहीं सकता. मैं अभी जाकर सारा पैसा ले आती हूं फिर हम दोनों कहीं और चले चलेंगे और वहीं सारी उम्र गुलछर्रे उड़ाएंगे.'

ठग को और क्या चाहिए था. उसने कहा, 'तुमने लाख टके की बात कही. अच्छा तो तू अभी चली जा और कल भोर होते ही इसी ठिकाने पर आ जाना. हम दोनों किसी दूसरे शहर में जाकर बस जाएंगे और फिर तो मौज-मस्ती के अलावा दूसरा कोई काम ही नहीं रहेगा.'

किसान की जोरू अगले दिन प्रातः लौटने का वादा करके हंसती हुई अपने घर लौट गई. रात के समय जब उसका पति सो गया तो उसने उसका सारा पैसा समेट लिया और भोर होते ही उसी ठिकाने पर जा पहुंची. ठग की प्रसन्नता का तो आर-पार ही नहीं था. वह उसे आगे करके उसके पीछे-पीछे चल गया. भागते हुए जब वे दो योजन की दूरी पार कर गए तो रास्ते में एक नदी पड़ी.

ठग ने सोचा यह अधेड़ तो हो ही चुकी है. इसके साथ जिंदगी बिताने का क्या तुक. और फिर यदि कोई इसे ढूंढ़ता हुआ आ धमका तो आफत ऊपर से आ टपकेगी. अच्छा यही है कि इसका पैसा ऐंठ लूं और यहां से फूट लूं. इसे साथ ले चलने का तो कोई लाभ है ही नहीं.

अब ठग ने उस किसान स्त्री से कहा, 'प्यारी, यह नदी बहुत गहरी है. इसे पार करना आसान नहीं है. तुम अपनी गठरी मुझे दे दो. पहले मैं इसे ले जाकर उस पार रख आता हूं फिर लौटकर तुम्हें अपने कंधे पर चढ़ाकर पार कराऊंगा.'

किसान की जोरू ने कहा, 'तुम जैसा ठीक समझो वैसा करो. अब क्या मेरा क्या तुम्हारा.' उसने अपना सारा माल मता उस ठग को थमा दिया.

यदि जोरू दुनिया में सबसे अधिक प्रिय होती है तो भी उसके कहने में आकर मित्रों और भाइयों को तो समुद्र में नहीं फेंक दिया जाता. मैं तो पहले ही समझ गया था कि तुम्हारे जैसा मूर्ख जीव अपना सत्यानाश तो करके ही रहेगा.

ठग ने कहा, 'प्यारी, तुम अपने कपड़े भी उतार कर दे दो. इन्हें भी उस पार रख आऊंगा नहीं तो नदी पार करते समय ये भीग जाएंगे और आगे चलना मुश्किल हो जाएगा.'

किसान की जोरू ने झट अपने कपड़े भी उतार कर उसे सौंप दिए.

अब क्या था. नदी के पार पहुंचकर ठग उसके पैसे और साड़ी लेकर चंपत हो गया. इधर बेचारी किसान की जोरू अपने दोनों हाथों से अपनी लाज ढंके सिकुड़ी बैठी हुई उसके लौटने की राह देखती रही. इसी बीच एक सियारिन मांस का एक टुकड़ा दबाए हुए उधर आ निकली. तीर पर आते ही उसने देखा एक मछली किनारे पर पड़ी हुई है. उस मांस के टुकड़े को वहीं रखकर वह उस मछली को गटकने को दौड़ पड़ी. उसे अपनी ओर आते देख मछली ने लगाई छलांग और पानी में कूद कर ओझल हो गई. इसी बीच आसमान में उड़ती हुई एक चील झपट्टा मारकर मांस से उस टुकड़े को उड़ा ले गई.

सियारिन के तो किए-किराए पर पानी फिर गया. वह अकचका कर चील की ओर देखने लगी. उसे इस तरह अकचकाई देखकर किसान की जोरू ने उसकी खिल्ली उड़ाते हुए कहा, 'अरे सियारिन, तेरा मांस तो चील लपक ले गई और मछली पानी में चली गई, फिर इस तरह अकचका कर तू देख क्या रही है?'

सियारिन तो जलकर राख हो गई. बोली, 'अरे नंगिन, तू अपने को क्या लगाती है! तेरा तो पति ही हाथ से गया और तेरा यार भी तुझे छोड़कर भाग लिया. तू मुझ पर क्या हंसेगी!'

अभी घड़ियाल ने कहानी पूरी ही की थी कि एक जलचर ने आकर फिर बताया कि घड़ियाल के घर पर भी एक बहुत बड़े घड़ियाल ने कब्जा कर लिया.

यह सुनकर उसके दुख का ठिकाना न रहा. वह सोचने लगा कि उस बड़े घड़ियाल को अपनी मांद से निकाले तो कैसे? वह कातर होकर बोला, जरा मेरा दुर्भाग्य तो देखो. जो दोस्त था वह दुश्मन हो गया, घरवाली मर गई, घर पर किसी ने कब्जा कर लिया, अब और न जाने क्या होने वाला है. कुछ गलत तो कहा नहीं है कि चोट भी चोट खाई हुई जगह पर ही लगती है. घर में अनाज न हो तो भूख की आग और तेज हो जाती है. मनुष्य पर जब आफत आती है उसी समय उसके दुश्मन भी पैदा हो जाते हैं.

जब भाग्य ही उल्टा हो जाए तो झेलने की यही सब रह जाता है.

वह सोचने लगा कि अब करूं तो क्या. उससे चल कर लड़ूं या समझा-बुझाकर मनाऊं या फूट डालकर काम निकालूं या कुछ दे-दिवा कर छुटकारा पाऊं. फिर उसने सोचा कि क्यों न अपने बंदर मित्र से ही पूछ कर देखे. कहते हैं जो आदमी ऐसे लोगों से जो बड़े हैं, भलाई चाहते हैं और पूछने लायक हैं, पूछकर कोई काम करता है उसके किसी काम में कोई अड़ंगा नहीं आने पाता.

यह सोचकर उसने फिर अपने पुराने मित्र बंदर से कहा, 'मित्र, मेरा दुर्भाग्य तो देखो. इसी समय किसी बलवान घड़ियाल ने आकर मेरे घर पर भी कब्जा कर लिया. अब तुम्हीं बताओ, मैं करूं क्या? साम, दाम, दंड, भेद इन चारों उपायों में से मैं किसका अवलंबन करूं?"

उसकी बात सुनकर बंदर ने उसे डांटते हुए कहा, 'अरे नीच, मेरे लाख मना करने पर भी तू बार-बार मेरी जान क्यों खाता रहता है? मेरे पीछे हाथ धोकर क्यों पड़ा है? मैं तो तेरे जैसे मूर्ख को कोई सलाह तक नहीं देना चाहता.'

उसकी बात सुनकर घड़ियाल बोला, 'यार, मुझसे चूक तो बहुत बड़ी हो गई पर इतने दिनों की हमारी यारी, कम से कम उसी का खयाल करके सलाह दो कि इस स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए.'

बंदर बोला, 'मैं तुझे कुछ भी समझाने से रहा. तुम तो ऐसे नीच हो कि अपनी जोरू के कहने में आकर मुझे समुद्र में फेंकने को तैयार हो गए थे. यदि जोरू दुनिया में सबसे अधिक प्रिय होती है तो भी उसके कहने में आकर मित्रों और भाइयों को तो समुद्र में नहीं फेंक दिया जाता. मैं तो पहले ही समझ गया था कि तुम्हारे जैसा मूर्ख जीव अपना सत्यानाश तो करके ही रहेगा.'

जो आदमी अपनी मूर्खता या घमंड के कारण सज्जनों और शुभचिंतकों की बात नहीं मानता, उसका नाश तो उसी तरह हो जाता है जैसे घंटाधारी ऊंट का हुआ था.

घड़ियाल ने कहा, 'जरा खोल कर समझाओ.'

बंदर ने जो कहानी सुनाई वह इस प्रकार थी.■

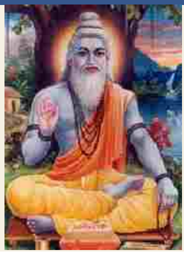

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

नवां दिन

> *मुझे ऐसा लगता है कि विनाश का समय निकट आ जाने पर हरा भी पीला ही दीख पड़ता है. तुम्हारी इन बातों से भी ऐसा ही मालूम देता है. तुम्हें भी हित में अहित का भ्रम हो रहा है और सब उल्टा ही सूझ रहा है.*

नवें दिन का युद्ध शुरू होने से पहले दुर्योधन भीष्म के पास गया और हमेशा की तरह जली-कटी सुनाकर उनके हृदय पर मानों भालों का प्रहार-सा करने लगा. पितामह को इससे पीड़ा तो बहुत हुई, परन्तु फिर भी उन्होंने धीरज न छोड़ा. वह बोले- 'बेटा, तुम्हारी ही खातिर यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूं और युद्ध में अपने प्राणों तक की आहुति देने को प्रस्तुत हूं. फिर भी तुम इस बूढ़े को इस प्रकार जब-तब क्लेश क्यों पहुंचाते हों? उचित और अनुचित का कुछ खयाल किये बिना तुम जो ये कटु वचन कह रहे हो, सो क्यों? मुझे ऐसा लगता है कि विनाश का समय निकट आ जाने पर हरा भी पीला ही दीख पड़ता है. तुम्हारी इन बातों से भी ऐसा ही मालूम देता है. तुम्हें भी हित में अहित का भ्रम हो रहा है और सब उल्टा ही सूझ रहा है. जानबूझकर अपनी ही इच्छा से तुमने जो बैर मोल लिया उसका परिणाम अब तुम्हें भुगतना पड़ रहा है. इस परिस्थिति में धर्म एवं कर्तव्य की दृष्टि से तुम्हारे लिये अब उचित यही है कि पौरुष एवं शौर्य से काम लो और निर्भय होकर युद्ध करो. मैं क्षत्रिय हूं. शिखंडी के विरुद्ध मुझसे लड़ा नहीं जायेगा. एक स्त्री का वध करना मुझसे नहीं हो सकता. न ही मैं पांडवों की हत्या अपने हाथों से करने पर राजी हूंगा. बस, ये मेरे दृढ़ विचार हैं. इन दो को छोड़कर और चाहे किसी से भी मुझे लड़ने भेज दो, मैं पीछे नहीं हूंगा. दूसरे, सारी क्षत्रिय-वीरों से खुले दिल से लड़ने को मैं प्रस्तुत हूं. तुम्हें भी यही शोभा देता है कि अविचलित होकर क्षत्रियोचित वीरता के साथ युद्ध करो और दूसरों को दोष देना छोड़ो.'

भीष्म ने इस प्रकार दुर्योधन को उपदेश दिया और सैन्य की व्यूह-रचना के बारे में आवश्यक सूचनाएं देकर विदा किया. दुर्योधन का क्षुब्ध हृदय भीष्म की बात सुनकर कुछ शांत हुआ. दुःशासन को बुलाकर बोला- 'भैया! आज हमें अपनी सारी शक्ति और सैन्यबल युद्ध में लगाना होगा. पितामाह भीष्म के आश्वासन पर मुझे पूरा भरोसा है. वह सच्चे हृदय से हमारे लिये लड़ रहे हैं. उनको यदि आपत्ति है तो शिखंडी से लड़ने में है. कहते हैं कि शिखंडी के विरुद्ध लड़ना उनकी प्रतिज्ञा के विरुद्ध होगा. अतः हमें और किसी की चिंता भी नहीं. केवल इसी बात की व्यवस्था खूब सतर्कता से करनी चाहिए कि शिखंडी पितमाह के सामने न जाने पावे. गाफिल सिंह का जंगली कुत्ता भी वध कर सकता है.'

नवें दिन युद्ध में अभिमन्यु और अलम्बुष में घोर संग्राम छिड़ गया. धनंजय के पुत्र ने पिता की ही भांति रण-कौशल का परिचय दिया. अलम्बुष का रथ चूर हो गया. उसे युद्ध क्षेत्र से जान लेकर भागना पड़ा.

दूसरी तरफ सात्यकि अश्वत्थामा से भिड़ा हुआ था. द्रोण की अर्जुन से थोड़ी लड़ाई रही. उसके बाद सभी पांडव-वीरों ने पितामह पर एक साथ हमला कर दिया. भीष्म की रक्षा के लिये दुर्योधन ने दुःशासन को भेज दिया. भीष्म ने अद्भुत लड़कर पांडवों के सारे प्रयत्न बेकार कर दिये. पांडवों की सेना की पितमाह ने उस दिन बड़ी दुर्गत की. वन में भूली-भटकी फिरने वाली गायों की भांति पांडव-सैनिकों की भी बड़ी दीन और दयनीय अवस्था हो गई.

यह देखकर श्रीकृष्ण ने रथ रोक लिया है और अर्जुन से बोले- 'पार्थ! जिस अवसर की प्रतीक्षा में तुम भाइयों ने तेरह वर्ष बिताये वह अवसर अब हाथ आया है. क्षत्रिय-धर्म को स्मरण कर लो और भीष्म को मारने में आगा-पीछा न करो.'

यह सुनकर अर्जुन ने सिर झुका लिया और बोला- 'पूजने

योग्य आचार्यों और पितामह की हत्या करने से वनवास करना ही श्रेयस्कर था. फिर भी आपका कहा मानता हूं. रथ चलाइए.'

अर्जुन ने अनमने होकर यह कहा और चिंतित भाव से लड़ने लगा, किन्तु भीष्म तो ऐसे प्रकाशमान हो रहे थे जैसे दोपहरी का सूर्य!

अर्जुन का रथ जब भीष्म की ओर बढ़ा तो पांडव-सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई. पुनः साहस आ गया. पर भीष्म ने अर्जुन के रथ पर बाणों की ऐसी वर्षा की कि जिससे सारा रथ ही बाणों के

क्रोध में भरे श्रीकृष्ण को अपनी ओर आते हुए देख भीष्म पितामह उनका स्वागत करते हुए बोले- 'भगवान कृष्ण! स्वागत हो! तुम्हारे हाथों मारा जाकर मैं अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त करूंगा.'

अंधकार में मानों छिप गया. न तो अर्जुन दिखाई देता था, न श्रीकृष्ण. न रथ दिखाई देता था, न घोड़े. फिर भी श्रीकृष्ण जरा भी न घबराए. अविचलित भाव से सतर्कता के साथ रथ चलाते रहे. अर्जुन के बाणों ने कई बार भीष्म के धनुष को काट-काटकर गिरा दिया. हर बार भीष्म अर्जुन के कौशल की सराहना करते और दूसरा धनुष उठा लेते और फिर अर्जुन और श्रीकृष्ण पर बाण चलाते, यहां तक कि अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को बड़ी पीड़ा हुई.

इस पर कृष्ण झुंझलाकर अर्जुन से यह कहते हुए कि 'तुम ठीक तरह से नहीं लड़ते हो.' कुपित होकर रथ से उतर पड़े और हाथ में चक्र लेकर भीष्म पर झपटे.

क्रोध में भरे श्रीकृष्ण को अपनी ओर आते हुए देख भीष्म पितामह उनका स्वागत करते हुए बोले- 'भगवान कृष्ण! स्वागत हो! तुम्हारे हाथों मारा जाकर मैं अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त करूंगा.'

इतने में अर्जुन दौड़कर श्रीकृष्ण के पास पहुंचा और दोनों हाथों से उन्हें कसकर पकड़ लिया. बोला- 'केशव! आपने शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है. अपना वचन आप न तोड़िये. पितामह को बाणों से मार गिराने का काम मेरा है. मैं ही इसे पूरा करूंगा. आप चलिये. मेरा रथ चलाते रहिये. मेरे लिये यही बहुत है.'

यह सुन वासुदेव फिर रथ पर चढ़ गये और उसे चलाने लगे.

भीष्म ने फिर से युद्ध शुरू किया. पांडवों की सेना की बड़ी बुरी गत बनी. सैनिक बहुत पीड़ित हो रहे थे. थोड़ी देर में सूर्यास्त हुआ और उस दिन युद्ध बंद कर दिया गया.■

Who Are You Calling Old?

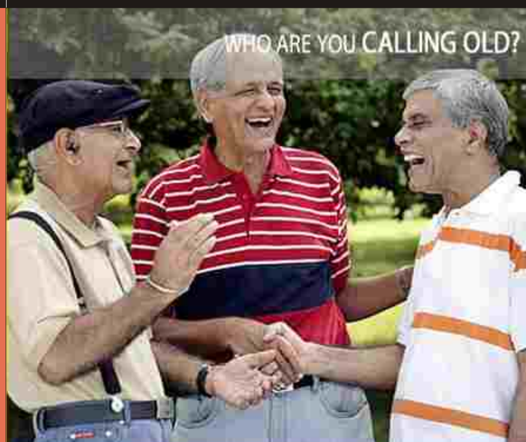

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

अमिताभ देव चौधरी

१९६२ में शिलांग में जन्म. यादवपुर विश्वविद्यालय से अंगरेजी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि. असम के बराक उपत्यका के प्रतिष्ठित कवि और लेखक. सिलचर से प्रकाशित दैनिक 'सामयिक प्रसंग' के साहित्य विभाग के सम्पादक. भाषा शिक्षण पर पुस्तिका 'हा हा रे रे' के नाम से प्रकाशित. नियमित रूप से उत्तर पूर्व एवं कोलकाता की बांग्ला पत्रिकाओं में लिखते रहते हैं. स्वपन सुमारी (census of Dreams) सहित अनेकों पुस्तकें प्रकाशित.

ईमेल : amitabha.devchoudhury@gmail.com मोबाइल - ०९४०१३०३४९२

अनुवाद

मूल बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद गंगानन्द झा

मातृभाषा में पठन-पाठन एवं आगामी पीढ़ी

आज जब झुम्पा लाहिड़ी, अमिताभ घोष या अमित चौधुरी अंगरेजी में कहानियाँ और उपन्यास लिखकर शोहरत पाते हैं और समाचार की सुर्खियों में छा जाते हैं तो हम प्रशंसा एवम् गर्व से फूले नहीं समाते. अंगरेजी में लिखते हैं तो क्या हुआ, बंगाल, भारत या बांग्ला देश की ही बातें लिखी हैं इन्होंने. हममें से कोई-कोई दबी या ऊँची आवाज में निन्दात्मक टिप्पणियाँ भी करते सुने जाते हैं कि उन्होंने बंगाल, भारत या बांग्ला देश और भारतीयता को विदेशी बाजारों में असबाब में बदल दिया है. लेकिन जब हम पढ़ते हैं कि तथाकथित ऐंग्लोइण्डियन साहित्य का मुख्य स्रोत, सलमान रुशदी के शब्दों में imaginary homeland के लिए छटपटाहट है अथवा जब झुम्पा लाहिड़ी से उनके देश का नाम पूछे जाने पर वे कहती हैं कि तीस साल विदेश में बिताने के बावजूद उनके माता-पिता का देश आज भी भारत ही है. तो इतिहास की कौतुकप्रियता और अपने को दुहराते रहने की प्रवणता पर हमारा ध्यान नहीं जाता. जब पिछले एक सौ साल के बांग्ला कहानी साहित्य के विवरण में झुम्पा लाहिड़ी की कहानी का भी सुमार किया जाता है तो हमसबों को स्वतः उस महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त की याद नहीं आती जिन्होंने आप्रवासी नहीं होते हुए भी मिल्टन की तरह ख्यातिप्राप्त कवि होने का स्वप्न देखा था. पराए धन के लोभ में उन्होंने सारे सुखों को त्याग कर भिक्षावृत्ति अपनाकर विदेश भ्रमण किया था, जिसके सपने में अन्त में प्रकट होकर कुललक्ष्मी भाषाजननी ने खजाना उड़ेल दिया था. शास्त्रों में कहा गया है, परजन अगर गुणवान हों, और स्वजन गुणहीन, तो भी गुणहीन स्वजन श्रेय होते हैं पराए हमेशा पराए ही रहते हैं.

माइकेल बांग्ला भाषा के एक अनिवार्य द्वन्द्व का नाम है. उन्होंने घर में रहते हुए भी, अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग में विदेश को, घर समझा था. झुम्पा जैसे लोग विदेश में रहते हुए भी इस भारत की मिट्टी में एक काल्पनिक घर तलाशते रहते हैं. माइकेल ने अन्ततः विदेशी भाषा की मेहमानवाजी स्वीकार नहीं की, उन्हें यह भिक्षावृत्ति लगी थी. आज झुम्पा लोग अंगरेजी भाषा का उपयोग भिक्षुक की भाँति नहीं, राजा के अधिकार से करते हैं. जरूरत पड़ने पर ये दाता की भूमिका लेने से भी नहीं हिचकिचाते. इनकी अंगरेजी में अकसर ही अनियन्त्रित तौर पर बांग्ला और भारतीय भाषाओं के शब्द और मुहावरे घुस आते हैं. अंगरेजी भाषा यह दान ग्रहण करे या न करे, इससे उनको कोई फर्क नहीं पड़ता. हो सकता है पराधीन देश के कवि होने के कारण माइकेल को यह भिक्षावृत्ति लगी हो और आज देश स्वाधीन है इसीलिए आप्रवासी झुम्पा-अमित-अमिताभ लोगों के लिए अंगरेजी में लिखना अपने अधिकार का उपयोग करने जैसा है. लेकिन इतिहास की यह पुनरावृत्ति विस्मयकर है कि आज भी ये झुम्पा-अमित-अमिताभ भारत के प्रति नॉस्टाल्जिक माया से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं.

इस तरह एक अनिवार्य, अमोघ द्वान्द्विक सम्पर्क भारतीय भाषाओं के इतिहास में अंगरेजी भाषा के साथ गुँथ गया है. आज की अधिकतर आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रारम्भिक प्रधान साहित्यकर्म अंगरेजों के जमाने में ही रचे गए थे. इन साहित्यकर्मों ने ही इन भारतीय भाषाओं के वर्तमान स्वरूप का निर्धारण किया है. अंगरेजी का आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ गम्भीर द्वन्द्वात्मक सम्पर्क रहा है. जो अंगरेज अपने अन्यायपूर्ण आचरण, अमानविकता, स्वार्थपरता शोषणपूर्ण शासन, और पीड़ा देने की प्रवृत्ति के कारण हमारे लिए असह्य थे उन्हीं अंगरेजों की भाषा एवम् साहित्य के जादुई आकर्षण से अपने को बचा भी नहीं पाते थे.

> महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने आप्रवासी नहीं होते हुए भी मिल्टन की तरह ख्यातिप्राप्त कवि होने का स्वप्न देखा था. पराए धन के लोभ में उन्होंने सारे सुखों को त्याग कर भिक्षावृत्ति अपनाकर विदेश भ्रमण किया था, जिसके सपने में अन्त में प्रकट होकर कुललक्ष्मी भाषाजननी ने खजाना उड़ेल दिया था.

> शास्त्रों में कहा गया है, परजन अगर गुणवान हों, और स्वजन गुणहीन, तो भी गुणहीन स्वजन श्रेय होते हैं पराए हमेशा पराए ही रहते हैं.

द्वन्द्व प्रगति का सूत्रपात करता है इसीलिए इस विदेशी भाषा के साथ, ऐतिहासिक कारणों से ही, हमारी भाषा के साथ जितने गहरे द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध में हमारी भाषा बँधती गई, उसी अनुपात में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसकी प्रगति होती रही है. नए नए रास्ते उभड़ते गए हैं. यहाँ तक कि अंगरेजी के प्रभाव को पूरी तरह नकारते हुए भी भारतीय भाषाओं में जो कुछ लिखा गया है, वह भी इसी द्वन्द्वमय इतिहास के कारण ही सम्भव हुआ है.

इसीलिए आज मध्य वर्ग के अभिभावकों को अपने बच्चों के लिए एकमात्र अंगरेजी माध्यम स्कूलों का विकल्प होना इतिहास का परिहास ही है. जब अंगरेज हमारे देश में थे, तो हमारा गन्तव्य था आत्म-आविष्कार, आत्म-उन्मोचन एवम् स्वभाषा के स्वरूप का उद्घाटन. उस वक्त मातृभाषा का आविष्कार और लालन-पालन हमारे कारागार की कुञ्जी थी. आलफॉसा दॉयत (Alphonse Daudet) की कहानी का वाक्य, "When a people are enslaved, as long as they hold fast to their language, it is as if they have the key to their prison." और आज जब अंगरेज हमारे देश में नहीं हैं, हमारा गन्तव्य है आत्म-विस्मरण, आत्मावलुप्ति, एवम् स्वभाषा के प्रति अवज्ञा. अंगरेज हमारे सामने थे तो हम स्वदेश, स्वभाषा की तलाश करते थे. जब अंगरेज हमसे दूर हैं, हम विदेश के लिए हा-हुताश कर रहे हैं.

सामने नहीं होने के बावजूद अंगरेज और अंगरेजी हम लोगों के बहुत निकट ही हैं. ब्रिटिश के रूप में उतना नहीं जितना अमेरिका के रूप में. प्रथम विश्व की भ्रुकुटि के रूप में है, बहुराष्ट्रीय संस्थाओं के सर्वभक्षी भूख के रूप में है, हमारी पूँजी एवम् भाग्य के नियन्ता के रूप में नेपथ्य या प्रत्यक्ष में है. भूमण्डलीकरण के फॉर्मूला में, केबल टी.वी. के मनोहारी स्वर्णमृग चैनेल सृष्टि में, विज्ञापन विपणन की चकाचौंध में है. चाटुकारिता की हमारी प्रवृत्ति में है. जब हम पराधीन थे, हमारा रक्त स्वाधीन था, कम से कम स्वाधीनताकामी तो था ही. आज जब हमारा देश स्वाधीन है, हमारा रक्त विदेश का गुलाम है. माँ की भाषा भूलकर केवल अंगरेजी पढ़ाने की इच्छा रखकर हम मातृभाषा के साथ अंगरेजी के ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक पृष्ठभूमि को ही भूल रहे हैं. हमें उपलब्धि और आश्वस्ति का एहसास होता है कि हमारे बच्चे मातृभाषा में काम चलाऊ जानकारी रखने के बावजूद अंगरेजी पर पूरी दखल रखते हैं. इन्हें वर्णमाला ही नहीं मालूम तो ये हिन्दी, बांग्ला पढ़ेगे कैसे. जैसे भारत के स्वाधीनता संग्राम के शत्रु रायबहादुर, खाँ बहादुर उपाधियों के उम्मीदवारों का नई पृष्ठभूमि में, नए कलेवर में पुनरुत्थान हुआ है.

लेकिन हमारी नई पीढ़ी जो अंगरेजी पढ़ रही है, वह उसका परिचय अंगरेजी साहित्य से नहीं करा पाती. वह भाषा नितान्त काम काज की भाषा है, रोजगार की भाषा, इस अंगरेजी में प्राण नहीं होता. हम अपनी भावी पीढ़ी के मन की खिड़की खोल देने के लिए अंगरेजी नहीं सिखा रहे हैं. अंगरेजी सीखने से वे अच्छा रोजगार कर सकेंगे, इतना ही हमारा अभीष्ट है.

शिक्षा-व्यवस्था का जीविकाकेन्द्रित होना कोई हमारे काल-खण्ड की ही खासियत नहीं है, अंगरेजों के समय भी ऐसा ही था. इसके पहले जीविकोपार्जन के लिए फारसी, उर्दू पढ़ना पड़ता था. लेकिन तब जीविका के लिए जरूरत होने के साथ-साथ शिक्षा भाषाकेन्द्रिक थी. स्वयम् की अभिव्यक्ति करने का माध्यम भाषा होती है. इसीलिए भाषाकेन्द्रिक शिक्षा मनुष्य को आत्माभिव्यक्ति का अवसर उपलब्ध कराती थी. चूँकि हम मातृभाषा में सबसे सहज रूप से आत्माभिव्यक्ति कर पाते हैं, हमारा तब का अंगरेजी ज्ञान मातृभाषा को भूलकर नहीं, उसके साथ उस विदेशी भाषा के पठन-पाठन को सेतु की तरह जोड़े रहकर हुआ करता था. अनिवार्यतः हमारी मातृभाषा एवम् विदेशी भाषा के बीच का द्वन्द्व अटूट रहता था.

आज चूँकि भाषा हमारी शिक्षा व्यवस्था के हाशिए ही पर है, हमारे द्वारा अपनी सन्तान को उतना ही भाषाज्ञान हस्तान्तरित हो रहा है, जो उनकी जीविकार्जन के लिए सहायक हो. आज भाषाज्ञान ऐसी कोई जरूरी उपलब्धि नहीं है. आत्माभिव्यक्ति की छटपटाहट, आकुलता आज हमारे पास मूल्यहीन है. अंगरेजी के साथ अपनी मातृभाषा के उस द्वान्द्विक सह-अस्तित्व को अपने भविष्य की आँखों से हमने मिटा दिया है. आज हम अंगरेजी भाषा के निकट समर्पित हैं और समर्पण द्वन्द्व का दुश्मन होता है. एक अवलोकन के अनुसार पाठ्य पुस्तकों की रचना इतनी त्रुटिपूर्ण होती है कि छात्रों में भाषा अध्ययन के प्रति प्रवणता संचारित नहीं हो पाती. लेकिन इन्हीं पाठ्यपुस्तकों से छात्र प्राणरस से अपने को प्रेरित कर सकते थे. इसकी वजह थी कि उनमें इस रस की पिपासा थी. आज के छात्रों में वह प्राणपिपासा नहीं है. हकीकत तो यह है कि जीवन के मायने तलाशने की बेचैनी की अनुपस्थिति, सन्धानहीनता हमारे कालखण्ड की विशिष्ठता है. मात्र इसी बेचैनी की प्रबलता ने उन्नीसवीं सदी के रूसी साहित्य में हमें अनेकों अमर उपन्यासों का उपहार दिया है. और सिर्फ इस बेचैनी के अभाव में हमारी मातृभाषा हमारे लिए सौतेली माँ के समान हो गई है. भाषा केन्द्रिक शिक्षा उस

युग में ही सफल हो पाती है जब आत्मप्रकाश, अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति की आकांक्षा प्रबल रहती है. हमारा कालखण्ड पहले की तुलना में आत्मप्रकाश, आविष्कार, उन्मोचन की दिशा में उस तरह बेचैन नहीं है. आत्मप्रकाश के लिए छटपटाहट की अनुपस्थिति के कारण ही हम भाषा के प्रति उदासीन हैं.

अहिन्दी भाषाई क्षेत्रों में अंगरेजी के अलावे हिन्दी को भी सम्बन्धित क्षेत्रीय भाषा के पठन-पाठन में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अवरोधकारी की संज्ञा दी गई है. स्वान्त्योत्तर भारत में हिन्दी को राजभाषा के रूप में चिह्नित किया गया, समझा गया. कालान्तर में यह अंगरेजी की जगह लेगी. दुर्भाग्यजनक रूप में अहिन्दी भाषाई लोगों को लगा कि औपनिवेशिक काल में अंगरेजी की तरह अब हिन्दी उनके ऊपर लादी जा रही है. अंगरेजी बाहर की दुनिया के साथ हमारे सम्पर्क की खिड़की बन गई थी. क्षेत्रीय भाषाओं की हिन्दी के साथ उस तरह की गठनमूलक या द्वन्द्वात्मक आत्मीयता विकसित नहीं हो पाई. राजनैतिक कुटिलावर्त नहीं रहने पर हिन्दी का क्षेत्रीय भाषाओं के साथ निकट संयोग स्थापित हो सकता था. इसका प्रमाण रोज-रोज विभिन्न सांस्कृतिक, वाणिज्यिक गतिविधियों में देखा जा रहा है.

एक सवाल है, भावी पीढ़ी को मातृभाषा क्यों पढ़नी चाहिए? इसका जवाब होगा कि मातृभाषा नहीं जानने से आत्म परिचय सम्पूर्ण नहीं होता. भारत की तरह के बहुभाषिक राष्ट्र के किसी खास जनपद के किसी व्यक्ति या समूह का प्राथमिक परिचय उसका आंचलिक या प्रादेशिक परिचय होता है. उसे यह परिचय अपनी मातृभाषा से मिलता है. भारतीय भाषा के साथ जब उसका द्वन्द्वात्मक या बहुमात्रिक सम्पर्क कायम होता है तो उसका देशी परिचय तात्विक स्तर पर भी प्रतिष्ठित होता है.और विदेशी भाषा की शिक्षा एवम् साहित्य पाठ उसमें विश्व नागरिकता का बोध पैदा करता है. इस प्रबन्ध की शुरुआत ऐंग्लो इण्डियन लेखकों की चर्चा से हुई है जो विश्व नागरिक होने के बावजूद, विदेशी भाषा को मातृभाषा की तरह सहजता से उपयोग करने के बावजूद असम्पूर्णता बोध के एहसास से पीड़ित हैं. इसका परिचय हमें उनके साहित्यकर्म से मिलता है. अर्थात् विश्व नागरिकता भी मातृभाषा मुखापेक्षी होने से नहीं रोक सकती. ऐसा हो ही सकता है कि कोई सोचे कि आत्मपरिचय फरिचय बुद्धिजीवियों का बुद्धिविलास है, साधारण लोगों को इन पचड़ों में पड़ने की जरूरत नहीं है.

कदाचित् आपने लक्ष्य किया हो कि मातृभाषा में शिक्षाग्रहण करने के प्रसंग में मैंने अंगरेजी माध्यम बनाम हिन्दी बांग्ला माध्यम स्कूलों के विवाद से इस चर्चा को सावधानी से अलग रखा है. मेरे विचार से चूँकि आज की शिक्षाव्यवस्था के मर्म में भाषाकेन्द्रिकता या भाषा-मनस्कता या आत्मप्रकाश के लिए उपयोगी भाषाज्ञान अनुपस्थित है ,स्कूल की पढ़ाई से सही भाषाज्ञान होना सम्भव नहीं है.

आज भाषाज्ञान के अनेकों प्रबल शत्रु हैं. अखबारों की भाषा विकृति, टीवी. चैनलों का भाषा-व्यायाम? हाँ, क्योंकि ये दोनों ही घर के माहौल के साथ जुड़े हुए होते हैं. पढ़े-लिखे अभिभावकों में से भी अनेकों ऐसे हैं जो समाचार-पत्रों की भाषा को प्रामाणिक मानते हैं.

मेरे खयाल में साहित्य को दरकिनार कर भाषाज्ञान सम्भव नहीं हो सकता. साहित्य केवल भाषानिर्भर शिल्प नहीं होता. साहित्य का इतिहास भाषा के क्रमिक विकास का भी इतिहास होता है. प्राचीन काल से लोकगीतों और लोकोक्तियों के अज्ञात, अनाम रचनाकारों से आज के प्रतिष्ठित, अविस्मरणीय एवम् विख्यात कवियों एवम् साहित्यकार साक्षी हैं— शिशुओं का मातृभाषा ज्ञान साहित्य के रास्ते से ही सहज रूप से अनायास ही अग्रसर होता रह सकता है. साहित्य, साहित्य एवम् साहित्य— भाषाशिक्षा के क्षेत्र में इसका कोई विकल्प नहीं.

आज भाषाज्ञान के अनेकों प्रबल शत्रु हैं. अखबारों की भाषा विकृति, टीवी. चैनलों का भाषा-व्यायाम? हाँ, क्योंकि ये दोनों ही घर के माहौल के साथ जुड़े हुए होते हैं. पढ़े-लिखे अभिभावकों में से भी अनेकों ऐसे हैं जो समाचार-पत्रों की भाषा को प्रामाणिक मानते हैं. भाषा के इतने सशक्त एवम् प्रभावशाली शत्रु होते हुए भी सबसे अधिक प्रभावशाली शत्रु के रूप में पहचान की जानी चाहिए उस मानसिकता की जो मातृभाषा को भी पराया समझती है, दूसरे की मातृभाषा को अपनी मातृभाषा से बड़ी और जरूरी समझना सिखाती है. इस मानसिकता का स्रोत मुख्यतः आर्थिक अनिश्चयता में है, लेकिन आंशिक रूप से शायद हमारी चाटुकारिता की मनोवृत्ति में भी. जीवन को सुरक्षित रखने की प्रवणता ने ही तो पारम्परिक शिक्षा के विषयों जैसे बांग्ला, हिन्दी, अंगरेजी दर्शन शास्त्र, अर्थ शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीवविज्ञान इत्यादि का मूल्य कम कर दिया है. होटल मैनेजमेंट, व्यवसाय प्रबन्धन इत्यादि पेशागत विषयों का जन्म हुआ. फिर भी क्या इतना कुछ करने पर भी क्या हमारा जीवन सचमुच में अन्ततः सुरक्षित हो रहा है? सुख का अधिकार अर्जित करने का अभियान छेड़कर हम दुःख सहने की क्षमता खो रहे हैं.

हम लोगों के लिए कुछ बड़ा करना बहुत कठिन है. बहुत बड़ा हो पाना क्या अब कभी सम्भव होगा?■

डॉ. माधवी सिंह

ग्वालियर में जन्म. आध्यात्मिक गुरु श्रीराम शर्मा रचित 'अखंड ज्योति' पत्रिकाओं को पढ़ते हुए हिंदी प्रेम परवान चढ़ा. कविताएँ लिखती हैं. सम्प्रति : 'स्टेट कॉलेज', पेनस्यल्वानिया, अमेरिका में मेडिसिन प्रक्टिस तथा पेनस्टेट हरषी मेडिकल कॉलेज में टीचिंग फेकेल्टी हैं.

सम्पर्क : madhavi200215701@yahoo.com

अंधी दौड़

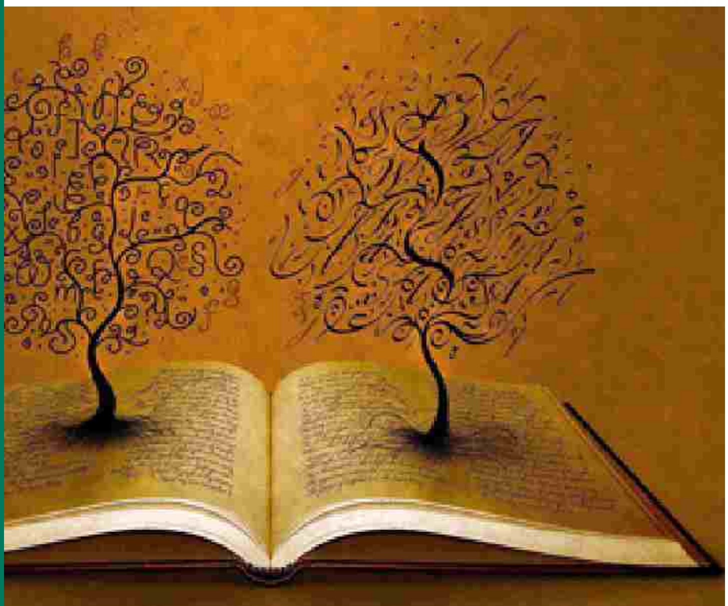

रेत पर महल कब तक टिकेगा?
जड़ में लगी हो घुन तो
पेड़ गिर कर ही रहेगा
नैतिकता से वंचित जीवन
जिस राह पर चलेगा
उस राह को वह
एक दिन तबाह ही करेगा
क्यों 'औसत नागरिक' का
जीवन हम नहीं स्वीकारते
क्यों अंधी दौड़ में हैं
चलते चले जाते
भौतिकता तो भटकाती ही रहेगी
मन को
सादगी से भरा 'जीवन आदर्श' ही
हमारा पथ प्रशस्त करेगा.

▪

क्षितिज के पार

मन को तृप्त करती तो है
रोशनी दिवस की
रात्रि के पहर में
क्षितिज के पार दिखाई देता है

अगणित तारे, तारामंडल
और नक्षत्रों का समूह
मन को अनंत की
सीमा के पार ले जाता है

जीवन के स्वरूप में
कुछ ऐसा ही रहस्य समाया है
सुख का मद और दु:ख की वेदना
एक ही चक्र की माया है

हाँ, जब चाह होगी उस दृष्टि की
जो आत्मा अनंत को दिखा सके
तब मिलेगा आनंद वह जो
है छिपा गहरे अन्तरंग में.

▪

डॉ. शिव गौतम

नेपाल की पूर्वी पहाड़ियों में जन्म. नेपाली भाषा में कविताएँ, लघुकथाएँ एवं आलेख लिखते हैं. रचनाएँ विभिन्न नेपाली पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. कविताओं की दो किताबें प्रकाशित. १९८५ से अमेरिका में निवास एवं वर्तमान में बोस्टन में रहते हैं. सम्प्रति - हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय में एसोसियेट प्रोफेसर (Biostatistics).

सम्पर्क : shivagau@gmail.com

कविता

खाली

मेरे बचपन में
एक कौतुहलता मुझे गुदगुदाया करती थी
कि दूर पर दिखाई देने वाली
वह पहाड़ी के उस पार क्या है

एक दिन
जब मैं इस लायक हुआ
मैं उस पहाड़ी की चोटी पर गया

उस चोटी के उस पार
एक दूसरी चोटी सामने आई
उन दो चोटियों बीच की खाली जगह
वे दो चोटियों को छू रही थी
जैसे एक नदी के ऊपर का पुल
नदी के दोनों किनारों को छू रहा होता है

एक चोटी पर
मेरी उपस्थिति थी
दूसरी चोटी पर
मेरी अनुपस्थिति की उपस्थिति थी
उन दोनों को
वह खाली जगह छू रही थी

मैं और इस व्याप्ति को
मेरा वर्तमान और सदा को
मैं और मेरे इतर को
कुछ न कुछ जोड़े हुए था
अगर कुछ नहीं तो
एक शाश्वत खालीपन जोड़े हुए था.

■

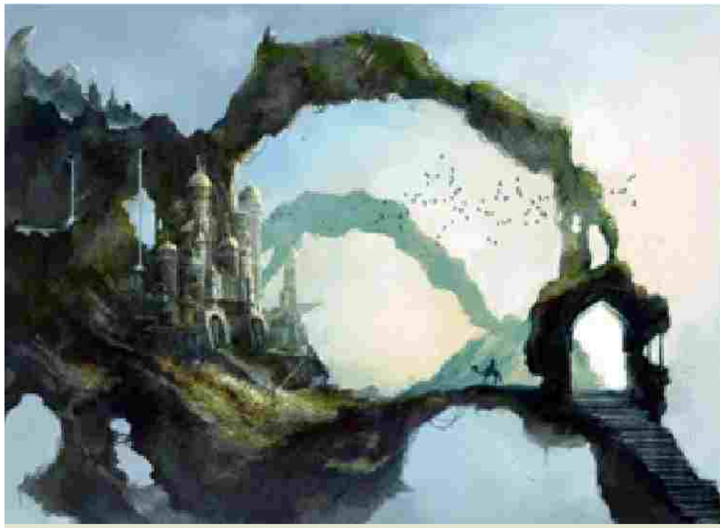

ज़िंदगी का नशा

आज जिया तो
फिर कल जीने को मन करता है
एक बार पिया तो
फिर से पीने को मन करता है.

जीने की इस लत को छुड़वाने के लिए
समुन्दर की सुनामी लहरों ने
दूर-दूर तक कई बार उछाला
भूचालों ने बार-बार अपनी चालें चलीं
सूखा, भुखमरी, झगड़े, अकाल ने कई जाल फेंके

चाहे कोई भी बहाना बनाकर
इस लत को, इस आदत को
मौत की अदालत ने
जितनी बार शहादत की सजा सुनाई
इसने साथ न छोड़ा आखिर तक
लग जाती है फिर से - जग जाती है फिर से
कोई नया, नन्हीं-सी कली में
जाकर खिल जाती फिर से
ज़िंदगी जीते जाना भी
एक नशा है शायद.

■

शेर सिंह

दिसम्बर १९५५ में हिमाचल प्रदेश में जन्म. पंजाब यूनिवर्सिटी से हिन्दी में एम.ए., विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, लघुकथा एवं आलेखों का प्रकाशन. अनेक संकलनों में कहानी एवं कविताएँ शामिल. कुछ ई-पत्रिकाओं पर भी रचनाएं प्रकाशित. राष्ट्र भारती अवार्ड सहित अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त. सम्प्रति - सिंडिकेट बैंक में प्रबंधक (राजभाषा) के पद पर गाजियाबाद में पदस्थ.

संपर्क : के.के.-१००, कविनगर, गाजियाबाद-२०१००१ (उ.प्र.) ईमेल- shersingh52@gmail.com

दावे

चाल, ढाल
बोल, व्यवहार
दावे, प्रतिदावे
मौन, मुखर
जोड़-तोड़ चरम पर

खाया-खिलाया
निगला-उगला
वर्चस्व की होड़ कदम-कदम पर

मान-सम्मान
इज्जत-आबरू
कसौटी की आंच पर

अकड़ी गर्दन
जकड़ में
मुफ्त मनोरंजन सड़क पर

कौन बड़ा, छोटा
कौन आगे, पीछे कौन
खुली लूट
डंके की चोट पर.

■

स्वयं हँसें औरों को फाँसें

गर्मी से कोई
कोई सर्दी से परेशान
है सब की
अपनी-अपनी पहचान

वे नरम तो
ये गरम
रुलाए कोई हँसाए कोई
सब का अपना धरम, करम

आगे देखते
खींचते पीछे
शकुनी की चालें चले
हिसाब मांगते नहीं थकते

जोड़-तोड़
उन की फितरत
दूसरों को फुसलाना, बहकाना
फिर घडियाली आंसू बहाना

पास जा कर
हमदर्दी जताना
पीठ फेरते ही
खिल्ली उड़ाना

कुंठित बुद्धि
क्षुद्र चालें
स्वयं हँसें औरों को फाँसें.

■

जगदीश चंद्र ठाकुर

२७ नवम्बर १९५० को शम्भुआर, जिला मधुबनी, बिहार में जन्म. बी. एस-सी. (कृषि). कविता, गीत, गजल, लघुकथा एवं व्यंग्य लिखते हैं. प्रकाशित पुस्तकें : तोरा अंगना में (मैथिली गीत संग्रह), तिरंगे के लिए (हिंदी गजल संग्रह), धारक ओइ पार (मैथिली दीर्घ कविता). सम्प्रति - सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में अग्रणी जिला प्रबंधक के पद से सेवानिवृत्त.

सम्पर्क : संस्कृति, रोड नं. १ ए, वृन्दावन कॉलोनी, पो. फुलवारी शरीफ, पटना-८०१५०५ ईमेल - jagdishchandra60@gmail.com

कविता

मुस्कुराता, गुनगुनाता, गीत गाता

मैं कभी मंदिर न जाता
और न चन्दन लगाता
मंदिरों-से लोग मिल जाते जहां पर
बस वहीं पर सिर झुकाता
देर थोड़ी बैठ जाता
मुस्कुराता, गुनगुनाता, गीत गाता

जिनके होठों पर हमेशा
प्रेम के हैं फूल खिलते
देख जिनको हैं हृदय में
प्रार्थना के दीप जलते
स्नेह, करुणा से भरी जो आत्मा
हैं हमारे वास्ते परमात्मा

मैं कभी गीता न पढ़ता
और न ही श्लोक रटता
कृष्ण-से कुछ लोग मिल जाते जहां पर
बस वहीं पर सिर झुकाता
देर थोड़ी बैठ जाता
मुस्कुराता, गुनगुनाता, गीत गाता

जिनकी आहट से सदा
मिलती हमें ताजी हवा
दृष्टि जिनकी उलझनों के
मर्ज की प्यारी दवा
इंसान के दिल में जहाँ
इंसान का सम्मान है
सच कहूँ मेरे लिए
वह दृश्य चारों धाम हैं

मैं न रामायण ही पढ़ता
और न धूनी रमाता
राम-से कुछ लोग
मिल जाते जहाँ पर
बस वहीं पर सिर झुकाता
देर थोड़ी बैठ जाता
मुस्कुराता, गुनगुनाता, गीत गाता

वेद की बातें समझ में हैं नहीं आतीं
चर्चा पुराणों की तसल्ली दे नहीं पातीं
देश-दुनिया के लिए जो जिंदगी
बस उन्हीं के ही लिए ये बंदगी
मैं कभी काशी न जाता
और न गंगा नहाता
लोग गंगाजल सदृश मिलते जहाँ पर
बस वहीं पर सिर झुकाता
देर थोड़ी बैठ जाता
शब्द-गंगा में नहाता
मुस्कुराता, गुनगुनाता, गीत गाता.

■

पूजा भाटिया 'प्रीत'

११ अगस्त १९७७ को अकोला, महाराष्ट्र में जन्म. जीव विज्ञान में स्नातकोत्तर तथा बी.एड. की उपाधि हासिल की. स्कूल एवं कॉलेज के दिनों में बास्केटबाल की राष्ट्रीय स्तर की खिलाड़ी काव्य संग्रह 'प्रीत' प्रकाशित. विभिन्न हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों, कविताओं एवं ग़ज़लों का प्रकाशन, आकाशवाणी इंदौर एवं विभिन्न मंचों से कविता पाठ. नवोदित युवा साहित्यकार के तौर पर पुरस्कृत. सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन.

सम्पर्क : ३६५-बी, सूर्य देव नगर, अन्नपूर्णा रोड, इंदौर-४५२००९ (म.प्र.) ईमेल - pbjsmash@gmail.com

एक

तेरी आंखें जब मुझसे बात करती हैं
बयां तेरे दिल के हालात करती हैं

सोच ले कहने से पहले राज़ अपना
दुनिया अपना बना के घात करती है

दिल अपना दे चुके तब ये जाना
मोहब्बत खामखा बर्बाद करती है

बच्चे ही बाँट लेते हैं मां-बाप को
ममता कहाँ पक्षपात करती है

टूट के, बिखर के काम आऊँ किसी के 'प्रीत'
कली माली से यही फरियाद करती है.

■

दो

दरिया ये समंदर में मिलता क्यूँ है
वो नहीं है तनहा तो लगता क्यूँ है

मिल के उससे यूं खो गया सब कुछ
मेरा कुछ नहीं सब अब उसका क्यूँ है

हौसलों से पंख निकाले हैं उसने आज
मन ये उड़ने से फिर डरता क्यूँ है

उसने ठानी है फिर कत्लेआम की
हुस्न ये वरना बेपर्दा क्यूँ है

चाहता नहीं मरना इन्सां कोई 'प्रीत'
पल-पल हर कोई फिर मरता क्यूँ है.

■

मुईन शमसी

आंवला ज़िला बरेली, उत्तरप्रदेश में जन्म. एम.ए., बी.एड., एल.एल.बी. की उपाधियां प्राप्त कीं. नाटकों एवं फिल्मों में गहरी रुचि. नाटक समूह से जुड़े हैं एवं अनेक लघु फिल्में बना चुके हैं. अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित. सम्प्रति - दिल्ली के एक विद्यालय में अध्यापन.

सम्पर्क : moinshamsi@yahoo.com

ग़ज़ल

लम्स

याद मुझे अक्सर आता है लम्स तुम्हारे होटों का
ख़्वाब में आकर तड़पाता है लम्स तुम्हारे होटों का

यादें धुंधला चुकी हैं यों तो साथ गुज़ारे लम्हों की
साफ़ है रोज़-ए-रौशन सा वो लम्स तुम्हारे होटों का

कोशिश सदहा की पर लम्हे भर को भी ना भूल सके
दिल पे यों हो गया है चस्पां लम्स तुम्हारे होटों का

जाम तुम्हारी नज़रों से दिन-रात पिया करते थे हम
लेकिन बस इक बार मिला वो लम्स तुम्हारे होटों का

जुदा हुए थे जब तुम हसरत तब से ये है शमसी की
काश दुबारा मिल जाए वो लम्स तुम्हारे होटों का.

■

शब्दार्थ :
लम्स / स्पर्श
होटों / होठों
रोज़-ए-रौशन / उजाले से भरा दिन
सदहा / सौ बार
चस्पां / चिपक जाना
हसरत / अभिलाषा

अब्र-ए-रहमत

अब्र-ए-रहमत तू झूम-झूम के आ
आसमानों को चूम-चूम के आ

कब से सूखी पड़ी है यह धरती
प्यास अब तो तू इसकी आ के बुझा

खेत-खलिहान तर-ब-तर होंगे
अपनी बूंदें अगर तू देगा गिरा

बूंद बन जाएगी खरा मोती
सीप मुंह अपना गर रखेगी खुला

फ़स्ल शमसी की लहलहाएगी
फिर न शिकवा कोई, न कोई गिला.

■

डॉ. देवेन्द्र मोहन मिश्रा

उत्तरप्रदेश में जन्म. पटना विवि से उच्च शिक्षा एवं अफ्रीकन इतिहास पर यू.के. में पी.एच-डी. हासिल की. भारत के अलावा युथोपिया, नाईजीरिया, कीनिया के विश्वविद्यालयों ने दर्जनों शोध-पत्र प्रकाशित किये. कनाडा में हिंदी प्रचार में लगे स्वयंसेवक के तौर पर ख्याति अर्जित की. हिंदी साहित्य सभा, टोरंटो के आप अध्यक्ष रह चुके हैं. कवितायें हिंदी विश्वा, हिंदी चेतना, हिंदी टाइम्स, हिंदी अब्रॉड आदि में प्रकाशित हुई हैं. वर्तमान में आप पैनोरमा इंडिया से सचिव के तौर पर जुड़े हैं.

सम्पर्क : devendramisra@hotmail.com

फूटनीति की राजनीति

अंग्रेज़ों की फूट नीति का करें अनुसरण राज
बिहारियों को खदेड़ने की धमकी देते आज

अखंड भारत की गरिमा को पहुंचा रहे हैं चोट
जय महाराष्ट्र की राजनीति कर जुटा रहे हैं वोट

विघटनकारी वक्तव्य पे क्यों शरद, सोनिया मौन
सूबे की सरकार न पलटे कहे जो भावै जौन

क्या फिर कोई जयचंद या मीर रहा बहकाय
लानत उस नेता पर जो अलगावी नीति चलाय

महाराष्ट्र के नाम पर दे रहे अशुभ संदेश
कलपे शिवा की आत्मा देख के ये परिवेष

संसद की गति ठप्प है कोयला आवंटन दोष
ध्यान बँटा दो वहां से क्या राज करे उद्घोष

जनता को कोई फिक्र नही है करे फिल्म इंज्वाय
चेरी छांड़ि न हुइहैं रानी कोउ आवे कोउ जाय.

■

बीत गये पैंसठ बरस

बीत गये पैंसठ बरस आज़ादी के इस साल
नेता कहें हुई है तरक्की पब्लिक है बेहाल

पब्लिक है बेहाल गरीबी अब बदतर है
मौज़ उडावें भ्रष्ट स्थिति बड़ी लचर है

राजनीति से लुप्त हो गयी गांधीजी की सीख
देश का धन अब स्विस बैकों में जनता मांगे भीख

प्रजातंत्र की ओट में लग रही देश की वाट
बेइमान व्यक्तियों की अब प्रभु उठायें खाट

जिम्मेवार नागरिक जिनकी रही वोट में खोट
चुने स्वार्थी लोलुप नेता जेब में रख के नोट

मारी कुल्हाड़ी पैर पे खुद के देवें किसको दोष
अब तो अगले इलेक्शन तक करना होगा संतोष

स्वाभिमान जागा अगर बनेगी बिगड़ी बात
शुभ प्रभात लाओ प्रभु है बड़ी अंधेरी रात.

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

उम्मीदों और संभावनाओं की शायरी

शायर संजय ग्रोवर की किताब 'खुदाओं के शहर में आदमी' के शीर्षक ने ही मुझे आकर्षित किया. इसी से मुझे शायर की नयी सोच का भान हो गया था, फिर जैसे जैसे मैं इसके वर्क पलटता गया, मेरी सोच पुख़्ता होती चली गयी.

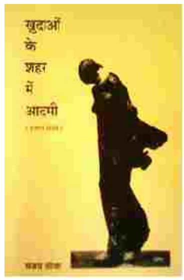

मौत की वीरानियों में ज़िन्दगी बन कर रहा
वो खुदाओं के शहर में आदमी बन कर रहा
ज़िन्दगी से दोस्ती का ये सिला उसको मिला
ज़िन्दगी भर दोस्तों में अजनबी बन कर रहा
उसकी दुनिया का अँधेरा सोच कर तो देखिये
वो जो अंधों की गली में रौशनी बन कर रहा

अपेक्षाकृत युवा संजय साहब के बागी तेवरों का अंदाज़ा इस बात से हो जाता है की ये किताब उन्होंने तसलीमा नसरीन साहिबा को समर्पित की है. ज्ञान प्रकाश विवेक ने इस पुस्तक की भूमिका में सही लिखा है कि अनुभवों की गहराई बेशक संजय की शायरी में न हो, अपने समय की मुश्किलों से मुठभेड़ की जुर्रत मौजूद है.

वक्त का यह कौन-सा संवाद है
आदमी अब हर जगह उत्पाद है
भीड़ है भेड़ों की, तोतों की तुकें
जो नया है वो महज़ अपवाद है
क्यूँ अमन के तुम उड़ाते हो कपोत
धर्म का मतलब तो अब उन्माद है

ये छोटी-सी किताब है जिसमें कुल जमा चौरासी पन्ने हैं लेकिन हर पन्ना बार-बार पढ़ने लायक है. संजय ने अपनी ग़ज़लों में बहुत से प्रयोग लिए हैं. उनकी एक ग़ज़ल में पत्थर शब्द का प्रयोग हर शेर में किया गया है लेकिन अलग-अलग सन्दर्भों में, उसी ग़ज़ल के चंद शेर देखें :

पत्थरों को भी जो आईनों के माफिक तोड़ दे
इतनी कुव्वत रख सके इक ऐसा पत्थर लाईये
हैसियत देखे बिना बेख़ौफ़ पत्थर मारना
आपके बस का नहीं, बच्चा कोई बुलवाईये
पत्थरों की मार से महफ़ूज़ रहने के लिए
मंदिरों में पत्थर अपने नाम के लगवाईए

ज्ञान प्रकाश भूमिका में आगे लिखते हैं 'संजय ग्रोवर की शायरी उम्मीदों और संभावनाओं की शायरी है. शायरी में आकाश को छूने की काल्पनिकता नहीं है. हवा को मुट्ठियों में कैद करने की जिदें भी नहीं हैं. ज़मीन पर चलने और अपनी जड़ें तलाश करने की बेकरारी जरूर है.' संजय ने अपने आसपास पनपते विरोधाभास को बख़ूबी अपनी शायरी में ढाला है. इनकी ग़ज़लें मंचीय नहीं हैं और व्यवस्था विरोध के सरल फार्मूले को अपनाती हैं. उनका प्रयास अच्छे

संजय ग्रोवर की शायरी उम्मीदों और संभावनाओं की शायरी है. शायरी में आकाश को छूने की काल्पनिकता नहीं है. हवा को मुट्ठियों में कैद करने की जिदें भी नहीं हैं. ज़मीन पर चलने और अपनी जड़ें तलाश करने की बेकरारी जरूर है.

शेर कहने का रहा है और उन्होंने अच्छे शेर कहें भी हैं :

जीती-जगती कलियों को लें तोड़, बनाते हार
पत्थर की दुर्गाओं की फिर पूजा करते लोग
कमज़ोरों के आगे दीखते पत्थर जैसे सख्त
ताक़तवर कोई आये तो फूल से झरते लोग
अपने काम की खातिर देते रिश्वत में परसाद
कहने को सब कहते हैं भगवान् से डरते लोग

संजय की ग़ज़लें देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं, इसके अलावा उनके दो व्यंग्य संकलन और दो ग़ज़ल संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं. इस किताब के प्रकाशक स्वयं संजय ही हैं इसलिए ग़ज़ल प्रेमियों को उनसे उनके घर १४७- ए. पाकेट ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-९५ पर संपर्क करना पड़ेगा अथवा आप उनसे मोबाईल ०९९१०३४४७८७ द्वारा भी संपर्क कर सकते हैं. अस्सी रु. मूल्य की ये किताब हर ग़ज़ल प्रेमी को पढ़नी चाहिए. ■

तेजेन्द्र शर्मा

२१ अक्टूबर १९५२ को जगरांव, पंजाब में जन्म. दिल्ली विवि से अंग्रेजी में एमए और कंप्यूटर साइंस में डिप्लोमा हासिल किया. दूरदर्शन के लिये शांति सीरियल का लेखन. अन्नू कपूर द्वारा निर्देशित फिल्म अभय में नाना पाटेकर के साथ अभिनय. बी.बी.सी. लंदन, ऑल इंडिया रेडियो व दूरदर्शन से कार्यक्रमों की प्रस्तुति, नाटकों में भाग एवं समाचार वाचन. ऑल इंडिया रेडियो व सनराईज रेडियो लंदन से बहुत सी कहानियों का प्रसारण. ढिबरी टाइट के लिये महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कार, सहयोग फाउंडेशन का युवा साहित्यकार पुरस्कार, सुपथगा सम्मान, कृति यू.के. द्वारा सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार.

सम्पर्क : kahanikar@gmail.com Mobile : 00-44-7400 313343

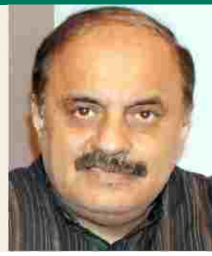

फ़्रेम से बाहर

‘विजय, हमारी शादी नहीं हो सकती?’ नेहा ने आवाज़ में बिना कड़वाहट लाते हुए कहा.

‘मगर क्यों? हम दोनों प्यार करते हैं; पिछले तीन सालों से एक दूसरे को जानते हैं; तुम्हारे ममी पापा मुझे पसन्द करते हैं और मेरे परिवार वाले भी तुम्हें बहू बनाना चाहते हैं. फिर दिक्कत क्या है?’

‘बात यह है विजय कि मुझे बच्चे अच्छे नहीं लगते. मैं किसी भी क़ीमत पर मां नहीं बनूंगी. और तुम्हारे मां बाप को घर का वारिस चाहिए होगा. ऐसे में हम दोनों अपने रिश्ते नॉर्मल नहीं रख पाएंगे. तनाव पैदा होगा ही. फिर शायद हम दोनों को अलग होना पड़े. उससे बेहतर है कि हम विवाह के बारे में सोचें ही नहीं.’

‘अगर तुम मुझसे शादी नहीं करोगी तो क्या सारी उम्र कुंवारी रहोगी? अरे जिससे भी शादी करोगी, बच्चे तो पैदा होंगे ही.’

‘दरअसल अब तो मुझे शादी भी एक ग़ैर-ज़रूरी सी इंस्टीटयूशन लगती है. मैं शायद लिव-इन अरेंजमेण्ट में ज़्यादा ख़ुश रह पाऊंगी. विजय, हम दोनों को अपनी-अपनी आज़ादी भी रहेगी और एक-दूसरे के प्रति कमिटमेंट भी. हम दोनों एक-दूसरे की निजी इच्छाओं का आदर करते हुए एक-दूसरे के साथ ज़िन्दगी बिता सकते हैं.’

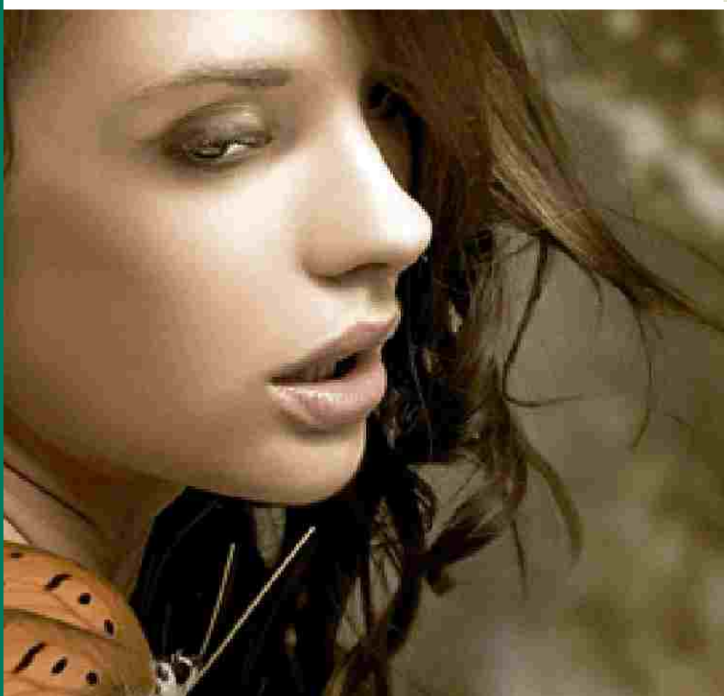

‘तुमने मुझे बहुत मुश्किल इम्तहान में डाल दिया है नेहा. लेकिन मैं तुम्हारी बात से न तो नाराज़ हूं और न ही इस रिश्ते को तोड़ने के बारे में सोच रहा हूं. यह प्रॉब्लम सिर्फ़ तुम्हारी ही नहीं है. हम दोनों की है. हमें इसकी तह तक जाना होगा और इसका कोई न कोई हल ढूंढना होगा.’

‘क्या तुम्हारा मां बनने को बिल्कुल भी जी नहीं चाहता? कहा जाता है कि औरत जब तक मां न बने, तब तक अधूरी रहती है. क्या तुम्हें यह अधूरापन कचोटेगा नहीं?’

‘मेरी ज़िन्दगी में बच्चों के लिये कोई जगह ही नहीं है विजय. जब कभी किसी बच्चे को रोते सुनती हूं तो लगता है कि दुनियां का सबसे कर्कश शोर सुन रही हूं. बच्चे की मुस्कुराहट में मुझे सांप की फुफकार सुनाई देती है. तुम नहीं समझ पाओगे. आज पहली बार तुमने कहा कि हम दोनों शादी करेंगे और हमारे बच्चे होंगे. आज से पहले तुमने बच्चों की बात कभी नहीं की. इसलिये मैंने भी कभी अपने मन की बात तुम्हें नहीं बताई.’

“दोनों ने हमेशा अपने वर्तमान के बारे में बातें की हैं; अपने-अपने कैरियर के बारे में सोचा है; भविष्य की कल्पनाएं की हैं, किन्तु कभी भी अपने अतीत एक-दूसरे के सामने नहीं खोले.”

विजय के लिये नेहा की बात समझ पाना कोई आसान काम नहीं था. दोनों ने हमेशा अपने वर्तमान के बारे में बातें की हैं; अपने-अपने कैरियर के बारे में सोचा है; भविष्य की कल्पनाएं की हैं, किन्तु कभी भी अपने अतीत एक-दूसरे के सामने नहीं खोले. विजय नेहा को खोना नहीं चाहता. किन्तु वह नेहा की बात को बिना विचार किये मान भी नहीं लेना चाहता. पेशे से वकील है. बिना किसी बात पर पूरा विचार किये हां या ना नहीं कहेगा.

कहानी

भला ऐसा कैसे हो सकता है कि पालने वाला काका हिलता भी था, मुंह से आवाज़ भी निकालता था और छूने पर अपने जैसा भी लगता था? फिर उसका मिन्कु क्यों वैसा नहीं करता?

नेहा अपनी बात कह कर वापिस आ गई है अपने अपार्टमेण्ट में. अकेली रहती है. इसी शहर में पैदा हुई, बड़ी हुई है. इसी शहर में उसके माता-पिता भी रहते हैं. फिर उसे अकेले रहने की क्या आवश्यकता है? उसके पिता नरेन शायद स्थिति को समझते हैं और नेहा से कभी शिकायत नहीं करते. किन्तु मां! भला मां कैसे इस स्थिति के साथ अपने आपको एडजस्ट करे. पूनम हमेशा नेहा को समझाने का प्रयत्न करती है. उसके फ्लैट में भी जाती है; मगर हर बार हार कर वापिस चली आती है.

नेहा ने फ्लैट भी घाटकोपर से बहुत दूर लिया है. लोखण्डवाला अन्धेरी में. अपने मां-बाप से दूर रहना चाहती है. उनके प्रति एक चुप्पी साध रखी है. कुछ कहती नहीं. बस मां की बात सुन लेती है और कड़वाहट से भरी मुस्कान चेहरे पर ले आती है. पूनम को समझ ही नहीं आता कि बेटी को वापिस बुलाए तो कैसे. वह जब तक नेहा को उसके जुड़वां भाइयों का वास्ता नहीं देती, नेहा मां की बात सुनती रहती है. लेकिन जैसे ही उसकी मां अभय और अक्षय का नाम लेती है, नेहा अपना रटा रटाया जवाब दोहरा देती है, 'मां, आप चलिये, मुझे अभी बैठ कर स्क्रिप्ट पर काम करना है. कल शूटिंग है और अभी तक सीन भी तैयार नहीं हुए.'

अभय और अक्षय का नाम सुनते ही नेहा अपने बचपन में वापिस पहुंच जाती है. अभी शायद दो ढाई वर्ष की ही होगी. अपने पापा से ज़िद करने बैठ जाती, 'पापा मुझे एक काका ला दो न! मैं उसके साथ खेलूंगी.'

नरेन बस बेटी के सिर पर हाथ फेरता और सीने से लगा कर प्यार कर लेता. नरेन अपने काम के सिलसिले में फैंकफर्ट गया था. वहां कॉफ़ऑफ़ स्टोर से अपनी नेहा के लिये एक रबड़ का बना शिशु ख़रीद लाया था. नेहा उसे देख कर इतरा इतरा कर सबको बताती, 'यह मेरा मिंकु है. मेरा भैया.'

नेहा अपने छोटे काके के साथ मस्त हो गई थी. नरेन और पूनम अपनी बच्ची की सादग़ी पर ख़ुश होते रहते. नेहा की छोटी से छोटी ज़रूरत भी नरेन के लिये जैसे भगवान का आदेश होती. पूनम नेहा को गायत्री मंत्र सिखाती. फिर आरती सिखाती और नेहा अपनी तोतली ज़बान में शुरू हो जाती, 'ओम भूल भवा शवा...'

पिता और बेटी में एक खेल भी चलता रहता. नरेन पूछता, 'नेहा किसकी बेटी है?' और नेहा का लम्बा सा जवाब आता, 'पापा, ममी, दादी, बाऊजी, नेहा, मिन्कु सबकी बेटी है, नेहा.'

खेल कैसे अपना महत्व खो देते हैं. अचानक अतीत में जाकर ग़ायब हो जाते हैं. आज न तो इस सवाल का ही कोई महत्व है और न ही जवाब का.

किन्तु जब इन खेलों का महत्व था, उन दिनों नरेन के एक दोस्त की पत्नी ने होली स्पिरिट में अपने पुत्र को जन्म दिया. नरेन, पूनम और नेहा भी नये मेहमान को देखने अस्पताल गये. नरेन और पूनम ने बच्चे को शगुन डाला और नेहा उसके निकट जा कर खड़ी हो गई. वह उस सफ़ेद कपड़े में लिपटे शिशु को देखे जा रही थी. वह कभी अपनी गोद में उठाए अपने मिंकु को देखती तो कभी नवजात शिशु को छू कर देखती. वह समझने का प्रयास कर रही थी कि यह नवजात भला उसके अपने मिन्कु से किस तरह अलग है. बालसुलभ मन कुछ समझ नहीं पा रहा था. इतने में नवजात शिशु कुनमुनाया. नेहा के नेत्र फैल गये. 'ये काका तो रोता भी है!'

जब तक अस्पताल में रहे, नेहा अपने मिन्कु को देखती रही और पालने में पड़े नवजात शिशु के साथ उसकी तुलना करती रही. दोनों के बीच के अन्तर को समझने का प्रयास जारी था. घर पहुंचते पहुंचते नेहा थक गई थी. जल्दी ही सो गई और पालने में पड़े शिशु के सपने देखती रही. सुबह उठने के बाद भी उसकी परेशानी कायम थी. अब वह चाहती थी कि उसका मिन्कु भी कुनमुनाए, हंसे और उससे बातें करे.

मन ही मन फ़ैसला किया और जा कर सीधी नरेन और पूनम के सामने खड़ी हो गई, 'पापा, मुझे ये वाला काका नहीं चाहिये.' और उसने अपना मिन्कु नरेन की गोद में डाल दिया. 'मुझे ब्लड वाला काका चाहिये. वैसा ही काका जैसा कल अस्पताल में देखा था.'

'ब्लड वाला काका!' पूनम और नरेन थोड़े हैरान हुए और जब बात समझ में आई तो दोनों हंसने लगे. 'पापा, ममी, आप दोनों हंसिये मत और अस्पताल से वैसा काका मेरे लिये ले कर आओ.' नेहा ने फ़रमान सुना दिया था.

पूनम और नरेन के लिये बात आई गई हो गई. मगर नेहा गुमसुम हो गई. उसे अपने मिन्कु में कमियां ही कमियां दिखाई दे रही थीं. भला ऐसा कैसे हो सकता है कि पालने वाला काका हिलता भी था, मुंह से आवाज़ भी निकालता था और छूने पर अपने जैसा भी लगता था? फिर उसका मिन्कु क्यों वैसा नहीं करता? नेहा की भूख भी कम होती जा रही थी. उसने दो दिन तक दूध भी नहीं पिया. हर वक्त ब्लड वाले काके के बारे में सोचती रहती.

पूनम से रहा नहीं गया, 'नरेन, वैसे नेहा ग़लत तो नहीं

कह रही. तुम सोचो अगर कल को हम दोनों को कुछ हो जाए तो नेहा पूरी दुनियां में अकेली हो जाएगी. ऐसा कोई भी तो नहीं जिसे वह अपना कह पाए. मुझे लगता है कि हमारा एक बच्चा और होना चाहिये.'

'पुन्नो, मुझे तो बस एक ही डर लगता है. दरअसल हम नेहा को इतना प्यार करते हैं, ख़ासतौर पर मैं तो उस पर जान देता हूं. अगर कल को हमारा दूसरा बच्चा हो गया तो उस बच्चे के साथ अन्याय हो जाएगा. मैं तो कभी भी उस बच्चे को प्यार नहीं कर पाऊंगा.'

पूनम ने हल्की सी मुस्कुराहट बिखेरते हुए कहा, 'जब मुझसे शादी की थी तब भी तो यही कहते थे कि अब दुनियां में किसी और को प्यार नहीं दे पाओगे. नेहा ने अपने प्यार का इन्तज़ाम ख़ुद ही कर लिया न! दूसरा बच्चा भी तुम्हारे दिल में प्यार की लौ स्वयं ही जला लेगा.'

'यार तुम्हारे पास हर बात का जवाब मौजूद रहता है. तुम कमाल की औरत हो.'

'जी नहीं, मैं किसी कमाल वमाल की औरत नहीं हूं. मैं तो बस आपकी औरत हूं!' अब शरारत पूनम की आंखों में भी दिखाई देने लगी थी. उसकी शरारत का ही असर था कि कुछ ही पलों में पूनम नरेन की बाहों में समा गई.

रात को डिनर टेबल पर नरेन ने नेहा को अपनी गोद में बिठा लिया, 'नेहा बेटा, हमने तुम्हारी बात मान ली है. अस्पताल को ऑर्डर कर दिया है कि हमें एक ब्लड वाला काका चाहिये. उन्होंने भी हां कर दी है. मगर वे कह रहे हैं कि वेटिंग लिस्ट बहुत लम्बी हैं. हमसे पहले कतार में बहुत से और लोग भी हैं. हमारा नम्बर आते आते नौ दस महीने तो लग ही जाएंगे. अब तुम ख़ुश हो जाओ. ममी पापा आपके लिये ब्लड वाला काका ज़रूर ले कर आएंगे.'

नेहा की आंखें ख़ुशी से भर आईं, 'सच्ची पापा! आप ब्लड वाला मिन्कु ले कर आएंगे? मैं आपनी सारी फ्रेण्डस को बताऊंगी कि आप अस्पताल से ब्लड वाला काका ले कर आने वाले हैं.'

नेहा का इन्तज़ार शुरू हो गया. रोज़ाना एक ही सवाल, 'पापा, अभी कितने महीने पूरे हो गये? आप लोग अस्पताल कब जाएंगे? हमारा काका भी ब्लड वाला ही होगा न? वो कुन-मनु कुन-मुन करेगा न?'

पूनम के टेस्ट से पता चल गया कि वह गर्भवती है, 'लो जी हमने कर दिया इन्तज़ाम आपकी बिट्टो के मिन्कु जी का. अब आप अपना ख़्याल रखा करिये. कुछ भी भारी सामान नहीं उठाना है. अब हमारा काम तो ख़त्म हो गया, हम कर चुके अपनी मेहनत. अब आपकी बारी है.

'आपका काम अच्छा है. बस कुछ ही मिनटों में ख़त्म. हमारी मेहनत तो पूरे नौ महीने चलने वाली है!'

नेहा के काम बहुत बढ़ गये हैं. अब उसे ज़िद है कि पालना जल्दी से साफ़ किया जाए ताकि काका उसमें लेट सके. वह अस्पताल से आने वाले ब्लड वाले अपने मिन्कु के लिये कपड़े बनवाना चाहती है. आजकल अपने आपसे बातें करती रहती है. घर के किसी कोने को पकड़ कर बैठ जाती है. नरेन दूर से देखता है. पूनम ख़ुश है कि नेहा नये आने वाले मेहमान को लेकर उत्साहित है. अस्पताल वाले भी शायद नेहा के दिल की बात जान गये हैं. इसीलिये उन्होंने पूनम और नरेन को एक नई ख़बर दी है. नेहा यह ख़बर सुन कर ख़ुश भी है और हैरान भी, 'नेहा बेटा, अस्पताल वालों ने कहा है कि हमारी नेहा क्योंकि अच्छी बच्ची है और ममी पापा को तंग नहीं करती है इसलिये वे हमें एक नहीं ब्लड वाले दो-दो काके देंगे. अब तुम ही बताओ कि एक काके का नाम तो तुमने रख लिया मिन्कु, तो अब दूसरे का नाम क्या रखोगी?

नेहा को अपने पापा की बात समझ ही नहीं आ रही थी. कहां तो एक काके के लिये प्रतीक्षा हो रही थी. अब अचानक दो दो काके! 'पापा, सच्ची में दो-दो काके मिलेंगे? आप सच कह रहे हो न?'

'बिट्टो पापा कभी आपसे झूठ बोलते हैं क्या?'

'नहीं. मेरे पापा कभी झूठ नहीं बोलते हैं... पर पापा अब मेरा काम कितना ज्यादा हो जाएगा. मुझे मिन्कु के साथ साथ चिन्कु का भी ख़्याल रखना पड़ेगा. है न, पापा?'

अन्जाने में नेहा ने अपने होने वाले जुड़वां भाई को नाम भी दे दिया था. अब नेहा, पूनम और नरेन मिन्कु और चिन्कु के जन्म की प्रतीक्षा कर रहे थे. नेहा को ग़ुस्सा भी आ रहा था कि ममी दिन-ब-दिन मोटी होती जा रही है, 'ममी आप अगर ऐसे ही मोटी होती गईं न, तो एक दिन फट जाएंगी.'

नरेन चिन्तित है कि जुड़वां बच्चों के होने से नेहा पर क्या असर पड़ेगा, 'पुन्नो, नेहा कहीं अकेली न पड़ जाए. दो-दो बच्चों की ज़िम्मेदारी उठाने में हम कहीं नेहा को नेगलेक्ट ना करने लगें.'

'आप बिल्कुल चिन्ता न करें. बच्चे बहुत एडजस्टिव होते हैं. हर हालात में ख़ुश रहना जानते हैं ये लोग.'

नेहा के सपने अब मिन्कु और चिन्कु के इर्द-गिर्द ही घूमते रहते. सोते जागते उनके बारे में अपने आपसे ही बातें करती रहती. उन्हें नहलाना, खाना खिलाना, तैयार करना आदि आदि.

'जब मुझसे शादी की थी तब भी तो यही कहते थे कि अब दुनियां में किसी और को प्यार नहीं दे पाओगे. नेहा ने अपने प्यार का इन्तज़ाम ख़ुद ही कर लिया न! दूसरा बच्चा भी तुम्हारे दिल में प्यार की लौ स्वयं ही जला लेगा.'

नेहा कुछ समझ नहीं पाई कि लड़के पैदा होने से लक्की कैसे हो जाते हैं. उसे समझ कर लेना भी क्या था. उसे तो सिर्फ़ अपने मिन्कु चिन्कु से काम था. 'ममी, मैं मिन्कु चिन्कु के खिलौने यहां ले आऊं? दोनों बोर हो जाते होंगे.'

अस्पताल के प्राइवेट कमरे में दो मरीज़ थे. दोनों के बीच एक पार्टीशन लगा था. नेहा आहिस्ता-आहिस्ता अपनी मां के पलंग के निकट पहुंची. मगर पालना तो खाली था. वहां तो एक भी ब्लड वाला काका नहीं था. पापा ने तो दो-दो की बात कही थी. मां की तरफ़ देखा. उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था. चुपके से पापा का हाथ पकड़ कर धीमी आवाज़ में पूछा, 'पापा, मिन्कु चिन्कु कहां हैं?'

नरेन ने पूनम की तरफ़ देखा, 'वो नर्स अभी ले गई है. सफ़ाई का टाइम है. अभी लाती ही होगी.'

नेहा के लिये एक-एक पल गुज़ारना कठिन हो रहा था. अन्ततः नर्स शिशुओं को ले आई. नेहा उन दोनों को उचक उचक कर देख रही थी. एकदम गोरे और लाल दिखाई दे रहे थे. उसके पापा और ममी ने उसकी बात मान ली थी. और हमेशा की तरह एक नहीं दो-दो चीज़ें ला कर दी थीं. 'ममी ये दोनों हमारे हैं न, हम इनको घर ले जा सकते हैं?'

'हां मेरी बिट्टो ये दोनों तुम्हारे ही हैं. अब तुमको ही इनका ध्यान रखना है.'

'पापा देखो कैसे मज़े मज़े में सो रहे हैं! इनको पता है कि इनकी दीदी इनसे मिलने आई है? घर आने दो इनको, फिर इनको देखती हूं.'

नर्स भीतर आई. पूनम का तापमान थर्मामीटर लगा कर देखा. 'तुम देखा, अभी ईदर बॉयस का सीज़न होता. परसों से सभी के लड़के ही पैदा हो रहे. और तुम्हारा तो दो-दो हो गया. वैरी लक्की कपल!'

नेहा कुछ समझ नहीं पाई कि लड़के पैदा होने से लक्की कैसे हो जाते हैं. उसे समझ कर लेना भी क्या था. उसे तो सिर्फ़ अपने मिन्कु चिन्कु से काम था. 'ममी, मैं मिन्कु चिन्कु के खिलौने यहां ले आऊं? दोनों बोर हो जाते होंगे.'

नरेन और पूनम बस हंस दिये.

मिन्कु और चिन्कु घर आ गये. ममी के पलंग के साथ रखे पालने को बार बार छूने का प्रयास करती नेहा. आज फिर उसने वही किया. पहले मिन्कु को किस किया और फिर चिन्कु को. और दोनों रोने लगे. आज पूनम ने डांट लगा दी, 'क्या कर रही है नेहा. रुला दिया न दोनों को! अब तुम बड़ी हो रही हो. थोड़ी मैच्योर हो जाओ.' पूनम ने अपनी थकावट का बोझ अचानक नेहा के बाल-कन्धों पर डाल दिया था.

एकाएक सहम गई नेहा. अचानक बड़ी हो गई. आंसुओं को आंखों की सीमा के भीतर ही रोक लिया. बाहर नहीं लुढ़कने दिया. आज पहली बार पूनम ने अपनी नेहा से गुस्से में बात की थी. नेहा पूरी तरह से चकराई खड़ी थी. वह शाम तक पालने के निकट भी नहीं गई. शाम को जब नरेन घर आया तो वह अपने पापा के साथ चिपक कर खड़ी हो गई. नरेन ने गोद में उठाया, उसके गाल पर पपी कर दी. और कहा, 'हमारी बिट्टो रानी कैसी है? उसके दोनो भाई क्या कर रहे हैं. आजकल तो दादी अम्मा को बहुत काम रहता होगा. दो दो बच्चों की देखभाल जो करनी होती है.'

नेहा अपने पापा को बस देखती रही. फिर अचानक शून्य में ताकने लगी. और अंततः रो दी. नरेन चकरा गया. कि यह क्या हुआ. उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से पूनम की ओर देखा. पूनम ने अपराधी सा महसूस करते हुए कहा, 'आज बिट्टो रानी को डांट पड़ी है. मिन्कु चिन्कु को रुला दिया... बस तब से गुमसुम है. पूरा दिन मुझसे एक बात नहीं की. बस दूर से देखती रही दोनों भाइयों को.'

'अरे आपने मेरी बेटी को डांटा! हम आपसे बिल्कुल बात नहीं करेंगे. अपनी बेटी के साथ चले जाएंगे. आपके साथ बिल्कुल नहीं रहेंगे.'

'नहीं पापा, ममी ने कुछ भी नहीं कहा. आप यहीं रहो. कहीं नहीं जाओ.' रुंआसी नेहा अचानक पूरी तरह से परिपक्व हो गई थी. पूनम और नरेन के हैरान होने की बारी थी अब.

पूनम का पूरा दिन अब मिन्कु और चिन्कु की देखभाल में ही बीतने लगा. नेहा के हिस्से में चिड़चिड़ापन बढ़ता जा रहा था. पूनम को स्वयं हैरानी भी होती कि न चाहते हुए भी यह सब कैसे हो जाता है. नरेन आजकल दफ्तर के काम से कुछ अधिक ही दौरों पर रहने लगा था. पूनम पर ज़िम्मेदारी का बोझ बढ़ता जा रहा था.

आज पूनम ने नेहा को ख़ुश करने के लिये स्ट्रॉबरी कस्टर्ड बनाया है. नेहा को यह स्वाद प्रिय है. क्योंकि कस्टर्ड का रंग भी गुलाबी सा हो जाता है और ऊपर मलाई जम जाती है, 'हैलो मेरी बिट्टो, देखो तुम्हारे लिये आज तो कस्टर्ड बनाया है. बीच में केले भी डाले हैं काट कर. आज हमारी रानी बिटिया कस्टर्ड खाएगी!'

'नहीं ममी, मेरा दिल नहीं कर रहा खाने को.'

पूनम कुछ समझ नहीं पाई. भला यह कैसे हो सकता है कि नेहा कस्टर्ड खाने से इन्कार कर दे? ज़रूर कुछ ऐसा है जो नहीं होना चाहिये. पूनम ने ज़िद नहीं की. नेहा सोने के लिये अपने बेडरूम की तरफ़ चल दी. जबसे मिंकु और चिंकु पैदा हुए हैं, नेहा के लिये मां का आंचल पराया सा हो गया है. उसे मां की गरमाहट की जगह अलग कमरे की सर्द दीवारों के साथ जुड़ना पड़ता है.

नेहा सुबह स्कूल जाने लगी है. नर्सरी. अब पूनम के लिये समस्या है. उसी वक्त उसके मिंकु और चिंकु आसमान सिर पर उठा लेते हैं. एक का नैपी बदलना है. दूसरा दूध के लिये चिंघाड़ रहा है. 'नेहा अब तुम बड़ी हो गई हो. कम से कम अपना कोई काम तो ख़ुद किया करो. मेरा तो दिमाग़ ख़राब हो जाता है. सुबह सुबह उठ कर ये करो, वो करो! तुम अपनी यूनिफ़ॉर्म तो ख़ुद पहन लिया करो.'

नेहा ने अपनी मां की बात को बहुत गंभीरता से ले लिया है. वह अपना दूध भी स्वयं ही गरम करने के लिये गैस चूल्हे के पास पहुंच गई. नन्हीं सी नेहा एड़ियां उचका कर गैस के ऊपर रखे दूध को देखने का प्रयास करती है. बहुत आसान नहीं है. वही होता है जो नेहा नहीं चाहती. दूध नेहा की यूनिफ़ॉर्म पर गिर गया. चिल्लाई नेहा. 'अब क्या गिरा दिया!' हड़बड़ाती हुई पूनम किचन में दाख़िल होती है.

'पूरी यूनिफ़ॉर्म गन्दी कर ली! तुम कभी सुधर नहीं सकतीं! चलो अब जा कर दूसरी यूनिफ़ॉर्म निकालो.'

सन्नाटे से भरी आंखें झपक भी नहीं पा रही थीं. मन में बस एक ही विचार आ रहा था - ममी ने एक बार भी नहीं पूछा कि नेहा तुम जल तो नहीं गईं? आंसुओं को अब आंखों की कैद में रोक पाना छोटी से नेहा के लिये कठिन हो रहा था. दर्द शरीर से कहीं अधिक अब दिल में हो रहा था. दिमाग़ सुन्न हो रहा था. अल्मारी खोली. सभी कपड़े एक ही रंग के लग रहे थे. यूनिफ़ॉर्म ढूंढ पाना मुश्किल होता जा रहा था. बिना इस्तरी किये कपड़े पहन लिये. ममी तो कभी भी ऐसे कपड़े पहन कर स्कूल नहीं जाने देती थी. फिर आज...?

अब नेहा को अकेले ही स्कूल बस के लिये दूसरी मंज़िल से नीचे जाना पड़ता है. पहले तो ममी लिफ़्ट से नीचे छोड़ कर, बस में बैठा कर आती थी. नेहा को समझ नहीं आ रहा कि उसका कुसूर क्या है. सीढ़ियों में पान की पीक देख कर नेहा को उबकाई महसूस होती है. लिफ़्ट से ऊपर नीचे आने के मज़े से भी वंचित...!

नेहा सहमती जा रही है. उसकी टीचर भी चिन्तित है. एक दिन नेहा की ममी को बुलवा भेजती है. पूनम पड़ोस की मिसेज़ गुलवाड़ी से मदद मांगती है. 'अरे मिसेज़ दीवान, अगर पड़ोसी ही पड़ोसी के काम नहीं आएगा तो भला दुनियां कैसे चलेगी? आप बेफ़िक्र हो कर बच्ची के स्कूल जाइये. चिन्ता नको! अपुन है न. मिन्कु और चिन्कु को अपुन देख लेगा... अरे हां पूनम जी आते वक्त रास्ते में से एक लिटर दूध मेरे लिये लेते आइयेगा. घर में दूध ख़त्म हो गया है.'

> पहले नेहा क्लास में हंसी मज़ाक करती थी. सभी बच्चों के साथ इंटर-एक्शन करती थी, सभी नर्सरी राइम्ज़ आगे बढ़ बढ़ कर सुनाती थी. बट नाउ आई नोटिस कि यह एकदम डरी डरी रहती है. थोड़ी थोड़ी बात पर रोने लगती है.

पूनम को समझ नहीं आ रहा कि टीचर क्यों बुला रही है. नेहा के रिज़ल्ट तो बुरे नहीं आते. पढ़ाई में तो अच्छी भली है. फिर समस्या क्या हो सकती है?

पूनम नेहा की क्लास में पहुंच गई है. मिसेज़ कूपर भली महिला है. पूनम की आंखों की अनिश्चितता को समझ रही है. किन्तु बच्चों के सामने बात नहीं करना चाहती. क्लास के बाहर आ गई है. पूनम अभी तक अभिवादन से आगे नहीं बढ़ पाई है. 'मिसेज़ दीवान, आप सोच रही होंगी कि मैनें आपको स्कूल में क्यों बुलाया है.' पूनम मिसेज़ कूपर की बात सुनने के लिये लगभग उतावली हो रही थी.

'बात यह है मिसेज़ दीवान, मैं पिछले कुछ हफ़्तों से नेहा में ख़ासा बदलाव महसूस कर रही हूं. यह क्लास में एकदम चुप रहती है. पहले नेहा क्लास में हंसी मज़ाक करती थी. सभी बच्चों के साथ इंटर-एक्शन करती थी, सभी नर्सरी राइम्ज़ आगे बढ़ बढ़ कर सुनाती थी. बट नाउ आई नोटिस कि यह एकदम डरी डरी रहती है. थोड़ी थोड़ी बात पर रोने लगती है.'

पूनम एकटक टीचर की बात सुन रही थी. परेशानी उसके माथे पर बल बनाए जा रही थी. वह पूरी बात जानना चाह रही थी.

'नाउ लुक मिसेज़ दीवान, आजकल नेहा की यूनिफ़ॉर्म ठीक से आयरन नहीं होती है; उसके जूते बहुत गन्दे रहते हैं और कई बार तो जूते के फीते भी ठीक से नहीं बांधे होते. मैं यह सब भी समझ लेती. मगर कल मैनें जब नेहा का होमवर्क चैक करने के लिए इसकी नोटबुक खोली, आई सॉ दिस!'

पूनम ने कॉपी अपनी आंखों के सामने की 'वहां एक औरत की ड्राइंग बनी थी और नीचे टेढ़े मेढ़े अक्षरों में लिखा था' ममी गंदी है.

पूनम लगभग हकलाते हुए अपनी सफ़ाई दे रही थी, 'वो क्या है मिसेज़ कूपर पांच महीने पहले नेहा के जुड़वां भाई पैदा हुए हैं. शायद मैं उसे पूरा टाइम नहीं दे पा रही. इसीलिये रिएक्ट कर रही है. लेकिन मैंने कभी ऐसा सोचा भी नहीं था कि इसके मन ही मन में इतनी प्रॉब्लम्स चल रही हैं.'

मिसेज़ कूपर ने बहुत शान्त भाव से पूनम की बात सुनी, 'लुक मिसेज़ दीवान, मैं आपकी दिक्कतें समझ सकती हूं, मगर आपको नेहा को टाइम देना ही पड़ेगा. आप चाहें तो फ़ुल-टाइम बाई रखिये. मैं आपको एक बात साफ़ साफ़ बता दूं कि इस हालत में लड़की पर काफ़ी दबाव बन रहा है. बाद में आपको उसे किसी साइकेटेरिस्ट को दिखाना पड़ सकता है.

कहानी

ठीक यही रहेगा कि आप अपने पति से मामला डिस्कस करें और इससे पहले कि बात हाथ से खिसकने लगे, इसका कुछ इलाज ढूंढने की कोशिश करें.

थकी हारी टूटी पूनम घर वापिस आ गई. वह रास्ते में से मिसेज़ गुलवाड़ी के लिये दूध ख़रीदना भी भूल गई. उसके दिमाग़ में बार बार यही बात बजती जा रही थी 'ममी गन्दी है! क्या वह सच में ही गन्दी है? क्या वह अपनी बेटी को पूरी तरह से नेगलेक्ट कर रही है?' लिफ़्ट में घुसते घुसते उसे याद आया कि मिसेज़ गुलवाड़ी के लिये दूध ख़रीदना तो भूल ही गई. फिर से वापिस लौट पड़ी. उनके सामने शर्मिन्दा नहीं होना चाहती थी. अभी तो स्कूल में मिली शर्मिन्दग़ी से ही नहीं उबर पाई है.

मन में बैठा चोर कहीं ग़ुस्सा भी दिला रहा था कि आने दो आज घर. इतनी पिटाई लगाऊंगी कि याद रखेगी उम्र भर. मगर फिर दिल में बैठे डर ने समझाया कि मामला और बिगड़ न जाए. स्कूल में बात फैल जाएगी. अभी तक तो केवल अपनी कॉपी में ही लिख रही है, यदि छोटी सी आफ़त ने लोगों से कहना शुरू कर दिया तो?

नेहा घर लौटी तो बुरी तरह से ख़ौफ़ज़दा थी. मां की नज़रों से नज़रें नहीं मिला रही थी. पूनम ने कोई बात नहीं की. वैसे यह भी अच्छा था कि मिन्कु और चिन्कु दोनों सो रहे थे. आज उसने नेहा के कपड़े बदलवाए. और नाश्ता भी उसके आगे रखा. उससे बातचीत भी की, 'बेटा आज स्कूल में क्या क्या पढ़ाया?'

'पॉली पुट दि कैटल ऑन...' नेहा के चेहरे की घबड़ाहट अभी तक सहज नहीं हुई थी. एकाएक मिन्कु चिन्कु के रोने की आवाज़ आई. नेहा उचक कर उठी, 'ममी मैं देखती हूं.' फिर अचानक ठिठक कर खड़ी हो गई... 'नहीं आप देख लीजिये.'

नेहा की आंखों का दर्द आज पहली बार पूनम को महसूस हुआ.

शाम को नरेन घर लौटा. अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक थका हुआ लग रहा था. पूनम भांप गई कि यह बात करने का सही मौका नहीं है. उसने नरेन को चाय बना कर दी. चाय पीकर नरेन ने नेहा को अपने पास बुलाया; प्यार किया, 'हां मेरी बिट्टो रानी, आज स्कूल कैसा रहा?'

'पापा, आज स्कूल में एक नई पोयम सिखाई. पॉली पुट दि कैटे ऑन...'

'बिट्टो कैटे नहीं, कैटल. बोलो कैटल!'

'कैटल.'

'बहुत अच्छे बिट्टो!'

'पॉली पुट दि कैटल ऑन...'

'हां जी, हमारी बेटी कितनी क्लैवर है. देखो बेटा ऐसे ही रोज़ पापा को बताया करो कि स्कूल में क्या क्या सीखा.'

'यस पापा!'

'और हमारी बिट्टो अपने भाइयों के साथ खेली क्या? क्या कहते हैं भैया अपनी दीदी को? कहीं तंग तो नहीं करते?'

'नहीं पापा! वो तो ममी को तंग करते हैं. मुझे बिल्कुल नहीं करते.' नेहा उठी और अपने कमरे की तरफ़ चल दी.

मिन्कु चिन्कु सो गये. टीवी पर कार्टून देखते देखते नेहा भी सो गई, 'हां जी, अब बताइये पुन्नो जी; भला आपका दिन कैसा बीता?'

'आज नेहा की टीचर ने स्कूल बुलाया था... मिसेज़ कूपर ने.'

'क्यों नेहा ठीक से पढ़ाई नहीं कर रही क्या? मुझे तो उसने अपनी नई पोयम ठीक से सुनाई.'

'बात ख़ासी सीरियस है जी. टीचर कह रही थी कि नेहा क्लास में चुपचाप रहने लगी है. परेशान दिखती है. और उसने एक पेंटिंग बनाई है, एक औरत की पेंटिंग जिस के नीचे लिखा है ममी गन्दी है!'

'क्या! मगर क्यों? उसने ऐसा क्यों किया? क्या तुमसे नाराज़ चल रही है?'

'बात मज़ाक की नहीं है जी, इस पर सीरियसली विचार करना पड़ेगा. आपको तो पता ही है कि मुझे सारा दिन मिन्कु और चिन्कु से ही फ़ुरसत नहीं मिल पाती. आपको पता है, अब वो मिन्कु चिन्कु के नज़दीक भी नहीं आती. पहले कैसे कहा करती थी कि दोनों काके उसके अपने हैं. मिन्कु चिन्कु उसके बेटे हैं. अब तो उनके रोने की आवाज़ सुनती है; उनकी तरफ़ लपकती है मगर जैसे अचानक उसके पांव रुक जाते हैं, और वह वापिस चल पड़ती है. बस सहमी रहती है.

'पुन्नी, मैं बहुत दिनों से ख़ुद महसूस कर रहा हूं कि नेहा में तेज़ी से बदलाव आ रहे हैं. उसकी स्पॉन्टेनियटी तो बिल्कुल ख़त्म ही होती जा रही है. बस कुछ न कुछ सोचती रहती है और अपने आपसे बुड़बुड़ाती रहती है.'

'वो तो ठीक है, मगर अब उपाय भी तो हमें ही सोचना होगा न. मैंने आज ममी को फ़ोन किया था.'

'किस बारे में.'

'मैंने उनसे पूछा कि क्या वो नेहा को एक दो साल अपने पास रख सकती हैं. मगर वहां भाभी की बेटी भी अभी साल भर की है. मां ने कहा कि भाभी को मुश्किल होगी.'

'हमारी तो मां है ही नहीं कि उससे पूछा जा सके. पुन्नी क्या सच में समस्या इतनी बढ़ गई है कि तुम नेहा को अपने से दूर करने

दिल में बैठे डर ने समझाया कि मामला और बिगड़ न जाए. स्कूल में बात फैल जाएगी. अभी तक तो केवल अपनी कॉपी में ही लिख रही है, यदि छोटी सी आफ़त ने लोगों से कहना शुरू कर दिया तो?

रिश्ते केवल एक नाम हैं उसके लिये. कोई अहमियत नहीं रह गई. मगर फिर भी उसके घर के एक कोने में एक तस्वीर रखी है जिसमें नरेन, पूनम, मिन्कु और चिन्कु मौजूद हैं. हमेशा की तरह वह उस फ्रेम से बाहर खड़ी है!

तक के बारे में सोचने लगी हो? यह तो बहुत अच्छी स्थिति नहीं है.'

'बात यह है नरेन कि आप तो सुबह निकल जाते हैं दफ़्तर. मेरे लिये दिन भर इन बच्चों की देखभाल ही ज़िन्दगी बनकर रह गया है. मिन्कु रोता है तो चिन्कु भी रोता है. फिर नेहा भी अभी है तो बच्ची ही न. बालसुलभ ग़लतियां करती है. मुझे लगता है कि अब बड़ी हो गई है. इसे ज़िम्मेदारी समझनी चाहिये. बस इसी में गड़बड़ हो जाती है. कुछ कठोर शब्द कह जाती हूं उसे. फिर दुखी भी होती हूं. पर इस समस्या का हल तो हमें ही ढूंढना होगा नरेन.'

'कोई फ़ुल-टाइम बाई खोजने का प्रयास करें?'

'उससे समस्या हल नहीं होने वाली. बाइयों के अपने नख़रे कम हैं क्या.'

'ऐसा करते हैं, नेहा को पंचगनी स्कूल में दाख़िला दिलवा देते हैं. होस्टल में रहने से थोड़ा डिसिप्लिन भी सीख लेगी और तुम्हारी मुश्किल भी हल हो जाएगी.'

'इतनी छोटी बच्ची, रह लेगी होस्टल में?'

'अब कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा न!'

नेहा का चिल्लाना; रोना कुछ काम नहीं आया. बस पहुंचा दी गई पंचगनी. आहिस्ता आहिस्ता नेहा अपने आप को होस्टल के माहौल में ढालने लगी. गर्मी की छुट्टियों में जब घर आती तो उसका अकेलापन और बढ़ जाता. मिन्कु और चिन्कु बहुत ही विशेष जुड़वां बच्चे थे. बस आपस में एक-दूसरे के साथ ही मग्न. नेहा उनके लिये बस एक नाम था. बहन के साथ लगाव जैसी कोई स्थिति बनने की उम्मीद करना उनके साथ अन्याय होता. पूनम और नरेन ने कोई कोशिश भी तो नहीं की.

रक्षा-बन्धन पर भी भाई बहन इकठ्ठे नहीं हो पाते थे. छुट्टियां नहीं होती थी न उन दिनों. दूरियां कुछ अजीब ढंग से बढ़ती जा रही थीं. नेहा यदि अंतर्मुखी न बन जाती तो इसे आश्चर्य ही कहा जा सकता था.

'सुनिये, अब तो मिन्कु और चिन्कु कुछ बड़े हो गये हैं. क्यों न हम नेहा को वापिस बुला लें. अब तो हालात बदल चुके हैं.' पूनम ने अपनी इच्छा नरेन के सामने रखी.

'पुन्नो, मैं नहीं समझता कि नेहा अब घर वापिस आना चाहेगी. मैं उसके व्यवहार को ख़ासी गहराई से महसूस करता रहा हूं. फिर भी उससे बात करता हूं. हां एक बात साफ़ है कि हमने उसे उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ होस्टल में भेजा था. अब उसकी मर्ज़ी के बिना उसे घर आने को नहीं कहूंगा.'

'अरे, हमारी बेटी है आख़िर. क्या हमारा इतना भी हक़ नहीं कि उसे घर वापिस बुला सकें?'

'नहीं पूनम, बात इतनी आसान नहीं है. नेहा एक बहुत ही सेंसिटिव लड़की है. क्या तुमने महसूस नहीं किया कि वह हमसे कभी कुछ भी नहीं मांगती. जो हम ले देते हैं, बिना किसी ना नुकर के ले लेती है. उसे होस्टल भेज कर शायद हमने उसे एक अलग संसार में भेज दिया है. मैं उस दुनियां से वापिस आने का रास्ता देख नहीं पा रहा हूं.'

'आप मुझे डराइये मत. कोशिश तो करिये.'

सब कोशिशें नाकाम रहीं. नेहा ने स्कूल के बाद जूनियर कॉलेज और बी.ए. की पढ़ाई भी होस्टल में रह कर ही पूरी की. उसे अपने मां बाप के साथ कोई भी रिश्ता मंज़ूर नहीं था. इसका सीधा तरीका था कि अपने नाम के साथ जाति का ज़िक्र ही न करे. वैसे भी कविता लिखने का शौक़ था उसे. बस लगा लिया अपने नाम के साथ एक तख़ल्लुस नेहा 'अनामिका.'

नरेन ने काफ़ी समझाया कि उसे अर्थशास्त्र में डिग्री करनी चाहिये. मगर नेहा भला ऐसा कुछ क्यों करती जिससे नरेन को प्रसन्नता का आभास भी मिल सके? उसने निर्णय लिया कि वह मास-मीडिया में बी.ए. करेगी. यानि कि यहां भी विद्रोह! नेहा ने तय कर लिया है कि वह अपना जीवन स्वयं जियेगी. अपनी राहें स्वयं तय करेगी.

पढ़ाई पूरी होते ही उसे एक टी.वी. चैनल में नौकरी मिल गई, 'पापा मुझे घाटकोपर से शूटिंग के लिये जाने में ख़ासी दिक्कत होती है. फिर ऑटो-रिक्शॉ और टैक्सी में पैसे फ़िज़ूल में ख़र्च होते हैं. मैं अंधेरी लोखण्डवाला में शिफ़्ट करने जा रही हूं.'

'तुम मुझे सूचना दे रही हो या अनुमति मांग रही हो?'

'जी मैंने एक फ़्लैट किराए पर ले लिया है. वहां से ज़्यादातर शूटिंग स्पॉटस नज़दीक हैं. फिर मुझे रात बिरात लेट भी आना पड़ता है.'

पूनम अवाक! बस बेटी की बात सुनती रही. उसे उम्मीद थी कि अभी नरेन कुछ कहेगा. बेटी को डांटेगा. मगर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ. जो नरेन ने कहा, पूनम को समझ नहीं आ रहा था, 'बेटा, आपके पास पैसों का इन्तज़ाम है क्या? या... मैं कोई मदद करूं?'

'नो पापा, मैं मैनेज कर लूंगी.'

......

उस दिन के बाद से आज तक मैनेज ही कर रही है. रिश्ते केवल एक नाम हैं उसके लिये. कोई अहमियत नहीं रह गई. मगर फिर भी उसके घर के एक कोने में एक तस्वीर रखी है जिसमें नरेन, पूनम, मिन्कु और चिन्कु मौजूद हैं. हमेशा की तरह वह उस फ्रेम से बाहर खड़ी है!■

डॉ. मधु सन्धु

शिक्षा एम.ए., पी-एच.डी. एक कहानी संग्रह, एक गद्य संकलन, छह आलोचना की किताबों के अलावा पचास से ज्यादा शोध प्रबंधों का निर्देशन. दुनियाभर की नामी पत्रिकाओं में लगातार छपती रही हैं. गुरु नानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर के हिन्दी विभाग में पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष. वर्तमान में विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के मेजर प्रोजेक्ट पर कार्यरत.

सम्पर्क : बी-१४, गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर-१४३००५, पंजाब. ईमेल - madhu_sd19@yahoo.co.in

किताब

दोहरे मानदण्डों से जूझती धरती की परियां

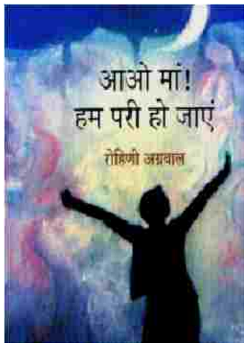

कविता और व्यंग्य से अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरूआत करने के बाद कहानी और आलोचना जगत में नाम बनाने वाली रोहिणी अग्रवाल के दूसरे कहानी संग्रह 'आओ मां! हम परी हो जाएं' में उनकी दस कहानियां संकलित हैं. कहानियां नारी प्रधान हैं. नारी विमर्श प्रस्तुत करती हैं. नारी उत्पीड़न के चित्र उकेरती है. नारी सशक्तिकरण को आवाज देती हैं. हर कहानी की नायिका चिल्ला चिल्ला कर कह रही है- 'औरत माने लिविंग ह्यूमन बीइंग, लाइक मी.'

शीर्षक कहता है कि यहां मां बेटी की कहानियां हैं. उनके विद्रोह, विसंगतियों से जूझने की ताकत, स्वप्न, पलायन, संघर्ष की कहानियां हैं. विद्रोहिणी बेटी और अंदर फैले आक्टोपसी भय में जकड़ी, दोयम दर्जे की त्रासदी से जूझती मां- दोनों को परी होना है. मां बच्ची के ही नहीं अपने औरत होने को भी कोसती है, उसके साथ घटी हर अनहोनी के लिए अपने को दोषी, पापिन और अपराधिन मानती है और हर बच्ची अपनी मां के दुख पहचानती है, महसूसती है. 'आओ मां! हम परी हो जाएं' में बेटी का विश्वास है कि 'जिसकी फ्राक का घेरा जितना ज्यादा फैलेगा, बड़े होकर उसे उतना ही सुख मिलेगा' और मां से पूछती है कि क्या वह बहुत कम घेरे वाली फ्राक पहनती थी. यानी रोहिणी की हर पंक्ति संवेदना के नए धरातल ही नहीं, दूरगामी चिंतन द्वार भी खोलती है.

'आओ मां हम परी हो जाएं' में रोहिणी अग्रवाल ने पितृसत्ता की ऐसी लानत मलानत की है कि कोई भला क्या करेगा. मीना का कत्थक बंद कर दिया जाता है. 'मुझे अपनी लड़की नचनिया नहीं बनानी. पतुरिया की तरह कूल्हे मटकाए और लोग देख देख कर सीटियां बजाएं. बाबूजी यकीनन मीना को नहीं किसी और को नाचता देख रहे थे. यकीनन सीटियां और कोई नहीं खुद बाबूजी बजा रहे थे. पर यह बात कोई और नहीं जानता था. जानते थे बाबूजी. क्यों बताते किसी को.'

हमारे महान देश की महान संस्कृति है. यह वह देश है जहां कन्या को 'कंजक' यानी दुर्गा मां का रूप मान अष्टमी को उसकी पूजा की जाती है. जहां स्त्री काली मां का सशक्त रूप लिए है. हर त्योहार में लड़कियों को वरीयता मिलती है. अष्टमी को जितनी कंजकें उतनी बरकत. घर के पुरुष उनके पांव धोते हैं. आव भगत करते हैं. उन्हें पूड़ी हलवा, चने आदि के इलावा पैसे, चूड़ियां, हेयरबैंड, चुनरियां, खेलने वाले सोफा सेट, किचन सेट, गैस, कूकर आदि अनेक भेंटें दी जाती हैं. पर 'कंजक' में पिता बेटे को पूरी तरह समझा देते हैं कि लड़कियां लागी होती हैं- यानी छोटे काम करके मांग कर खाने वाले लोग. काम्मे, नौकर-चाकर. वैसे ही जैसे गली के भिखमंगे हाथ में कटोरा ले मांगते हैं. औरत अन्नपूर्णा नहीं है, उसका काम है खाना बनाना और लड़कों का काम है खाना. यानी त्योहारों देवी देवताओं की लीक पीटना एक तरफ और पुरुषीय मानसिकता, इस देश का जीवन यथार्थ एक तरफ.

पिता, पति, भाई - सब पुरुष एक से हैं. है क्या यह औरत? 'मर्द की छाती की एक पसली मात्र!' हर औरत डॉ. रंजन त्रिपाठी यानी डेकुला के भय से अपनी-अपनी गुफा में बंद अपने हिस्से का जहर निगलने का प्रयास कर रही है, पर एक कसमसाते हुए विद्रोह के साथ. उनके यहां बेटियां मां से और मां बेटियों से जीवन संघर्ष की शक्ति बटोर रही हैं. 'क्या हम तीनों फैमिली नहीं हो सकती' में उत्पीड़न और सशक्तिकरण एक साथ चित्रित है. पुरुषीय गरिमा और पत्नी से फासला बनाए रखने के लिए नौकरों चाकरों की तरह पत्नी से साहब कहलवाना ही पतियों को रुचिकर रहता है. लेकिन

> शीर्षक कहता है कि यहां मां बेटी की कहानियां हैं. उनके विद्रोह, विसंगतियों से जूझने की ताकत, स्वप्न, पलायन, संघर्ष की कहानियां हैं. विद्रोहिणी बेटी और अंदर फैले आक्टोपसी भय में जकड़ी, दोयम दर्जे की त्रासदी से जूझती मां- दोनों को परी होना है.

एक असुरक्षा है, जो इस औरत को चैन नहीं लेने देती. 'आओ मां! हम परी हो जाएं' की झूला झूलने वाली बच्ची के रजःस्वला होते ही मां उसे राक्षसों की कहानियां सुनाने लगती है.

रोहिणी के यहां अगर पुरुष शिव है तो स्त्री शिवानी नहीं. वह भी शिव है, शिव की अर्धांग शक्ति है. नौकरीपेशा औरत भी यहां अर्थ स्वतंत्र नहीं. पर उनकी स्त्रियां पूरी घुटन में से भी सांस लेने की स्पेस निकाल ही लेती हैं. पतियों ने जान लिया है कि पर्स को नियमित रूप से भरने वाली वेतन की गड्डी औरत को आत्मनिर्भर कर उसमें आत्म विश्वास भरती है, इसलिए डॉ. रंजन त्रिपाठी ने उसके पर्स पर कब्जा कर रीढ़ की हड्डी ही तोड़ दी है.

'बेटी पराई नहीं होती, पापा' में बेटी को संबंधों की मिठास और अपनेपन की तलाश है. मां उसे पराई अमानत और सास पराई लड़की कहती है. वह चार भाइयों की बहन और मां पिता की दुलारी बेटी है. उसका जन्म दिन हमेशा दीवाली की तरह मनाया गया. उसे खूब पढ़ाया गया. वह अर्थ स्वतंत्र है. शादी के बाद पिता को खराब आवाज और खराब पिक्चर वाले ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी में मैच देखते पा वह उनके लिए नया टीवी लेती है, यह सोचकर कि वे बहुत प्रसन्न होंगे. पर बेटी से टीवी लेना उन्हें इतना बेचैन करता है कि उसे चैक काट कर पकड़ा देते हैं और बेटी एकदम पराई हो जाती है. 'लड़कियां तो वैसे भी पराया धन होती हैं. पराए धन का धन रख लें. नरक में भी ठौर ठिकाना नहीं मिलेगा.'

एक असुरक्षा है, जो इस औरत को चैन नहीं लेने देती. 'आओ मां! हम परी हो जाएं' की झूला झूलने वाली बच्ची के रजःस्वला होते ही मां उसे राक्षसों की कहानियां सुनाने लगती है. 'क्या हम तीनों फैमिली नहीं हो सकती?' की मां शाम को १२ और १५ वर्षीय बेटी को बाहर ले जाने में कतराती है. 'चिट्ठियां' में नयनतारा के बीसीए द्वितीय सेमेस्टर की परीक्षा के अंतिम पेपर से पहले पिता का हमउम्र किराएदार अपने मित्र के साथ मिल कर बलात्कार करता है और लड़की की जिंदगी तबाह हो जाती है.

स्वयंसेवी और सरकारी इरादों की व्यर्थता, दोगलापन रोहिणी ने बेनकाब किया है. 'चिट्ठियां' २००१ यानी नारी सशक्तिकरण वर्ष में नारी निकेतनों के कार्यों का विवरण प्रस्तुत करती है. बलात्कार के कारण विधवा मां नयनतारा की पढ़ाई छुड़वा कहीं भी उसकी शादी करना चाहती है. नयनतारा नारी निकेतन से कालेज होस्टल के लिए आर्थिक सहायता चाहती है, जबकि नारी निकेतन वालों को उसमें नहीं, उसके साथ हुए बलात्कार में दिलचस्पी है. वे नारी निकेतन की तरफ से बलात्कार की रिपोर्ट अखबार में छाप कर अपने कार्य की इति श्री मान लेते हैं. कैसा मजाक है कि वित्तीय सहायता की बजाय उसके साथ हुई दुर्घटना को सार्वजनिक कर उसके जीवन को और कष्टकर कर दिया जाता है. स्त्रियों के मुद्दे पर सिर्फ धड़ाधड़ सेमिनार वर्कशाप ही किए जाते है.

'आओ मां! हम परी हो जाएं', 'चिट्ठियां' में आर्थिक तंगी का जिक्र भी मिलता है.

इस धर्म निरपेक्ष देश की नस-नस में साम्प्रदायिकता बसती है. व्यवस्था के साथ अंतहीन लड़ाई का झूठा दंभ भरने वाले दल भी यहां हैं. 'आत्मजा' में राजनीति की आंच पर रितु और निखिल दा जैसे राजनेता और समाजसेवी अपनी रोटियां सेंक रहे हैं. मिसेज अलकनंदा की तरह कोई समाज सेवा कर ही नहीं सकता-न शिक्षण संस्थाओं में, न राजनीति में.

'आत्मजा' में शिक्षा तंत्र पर व्यंग्य कि स्काउट डे पर काम करवाने के कारण, पब्लिक स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के माता पिता रोष में आ जाते हैं. परिणामतः अलकानंदा को अपनी आनॅरेरी नौकरी और मि. नंदा को चेयरमैनशिप से हाथ धोने पड़ते हैं. 'कोलाज' में किरण की मनःस्थिति फैंटेसी से ही स्पष्ट की गई है. सीखचें की स्त्री अपनी ही बनाई हदबंदियों में कैद होकर रह गई है. बच्चों के खेल और खेल गीत-लोकगीत भी हैं. चेखव मैं और हातिमताई में फैंटेसी के जरिए दफतरी जीवन की विसंगतियां चित्रित हैं कि इन्सान जब वाकई गधा होता है, तो इन्सान के चोले में और जब इन्सान बनता है तो उसे गधे का चोला मिल जाता है. मूल कथ्य पर जोर देने के लिए कहानीकार आवर्तक शिल्प का प्रयोग भी कर रही है - जैसे औरत माने मर्द की छाती की एक पसली - जैसे वाक्यों की आवृति. रोहिणी की कहानियों में फड़फड़ाती तितली औरत का प्रतीक बन कर आई है. सूत्र सर्वत्र बिखरे पड़े हैं.

कहानियां पितृसत्ता के षड़यंत्रों के साथ-साथ समय और समाज, व्यवस्था और राजनीति के कूट रहस्यों को भी बेनकाब करती हैं.■

आओ मां! हम परी हो जाए
कहानीकार : रोहिणी अग्रवाल
मूल्य : २५०
प्रकाशक : सामयिक, दिल्ली
समय : २०१२

९वां विश्व हिन्दी सम्मेलन-२०१२

दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग शहर में ९वां विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित किया गया. २२ से २४ सितंबर तक चले सम्मेलन में हिन्दी के प्राचीन-आधुनिक पहलुओं से संबंधित परम्परागत और समसामयिक दोनों प्रकार के विषयों पर चर्चाएं हुईं. सम्मेलन का विषय 'भाषा की अस्मिता और हिन्दी का वैश्विक संदर्भ' रखा गया. शैक्षिक सत्रों के विषय थे - १. महात्मा गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान का संदर्भ, २. हिंदी : फिल्म, रंगमंच और मंच की भाषा, ३. सूचना प्रौद्योगिकी : देवनागरी लिपि और हिंदी का सामर्थ्य, ४. लोकतंत्र और मीडिया की भाषा के रूप में हिंदी, ५. विदेश में भारत : भारतीय-ग्रंथों की भूमिका, ६. ज्ञान-विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी, ७. हिंदी के विकास में विदेशी/प्रवासी लेखकों की भूमिका, ८. हिंदी के प्रसार में अनुवाद की भूमिका, ९. दक्षिण अफ्रीका में हिंदी शिक्षा-युवाओं का योगदान.

विश्व शांति, अहिंसा, समानता और सम्पूर्ण मानव जाति के न्याय के लिए लंबे समय तक महात्मा गांधी द्वारा और उनके जीवन से प्रभावित दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला द्वारा चलाए गए संघर्ष को देखते हुए सम्मेलन के उद्‍घाटन स्थल का नाम गांधीग्राम, पूर्ण सत्र हॉल का नाम नेल्सन मंडेला सभागार तथा अन्य सत्रों वाले स्थलों के नाम शांति, सत्य, अहिंसा, नीति और न्याय रखे गए.

सम्मेलन का उद्‍घाटन विदेश राज्यमंत्री परनीत कौर और दक्षिण अफ्रीका के वित्तमंत्री प्रवीन गोर्धन ने किया तथा इसमें लगभग ३०० लोग भारत से और २०० लोग दुनिया के अन्य देशों से हिस्सा लेने पधारे. हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने तथा उसके प्रचार प्रसार में योगदान के लिए भारत से २० और दुनिया के अन्य देशों से २० लोगों को सम्मानित किया गया.

उद्‍घाटन के अवसर पर भारत की विदेश राज्यमंत्री प्रनीत कौर ने हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने का संकल्प लिया. सम्मेलन में दक्षिण अफ्रीका के वित्त मंत्री प्रवीन गोर्धन, मारीशस के शिक्षा एवं कला मंत्री मुकेश्वर चुनी, दक्षिण अफ्रीका के उप विदेश मंत्री, इला गांधी, दक्षिण अफ्रीका के हिन्दी प्रेमी, देश-विदेश से आए हिन्दी के विद्वान और हिन्दी सेवी मौजूद थे.

इस समय विश्व के लगभग डेढ़ सौ विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ी और पढ़ाई जा रही है. यूनेस्को की सात भाषाओं में

> *गांधी का चिंतन परम्परागत होते हुए भी क्रांतिकारी चिंतन है. उनकी मुख्य चिंता थी कि अंग्रेजी कहीं देश की राष्ट्रभाषा न बन जाए. वे मानते थे कि हिन्दी कई बोलियों की संगम है और भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली भाषा है.*

सम्मेलन में दुनिया के विभिन्न देशों में हिंदी भाषा की अलख जगाने वाले ३० हिंदी विद्वानों को उनके योगदान के लिए सम्मानित किया गया.

हिन्दी को भी मान्यता मिली है. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई टेलीविजन चैनलों ने हिंदी के साथ-साथ दूसरी भारतीय भाषाओं में भी अपने कार्यक्रम प्रसारित करने शुरू कर दिए हैं. इस अवसर पर अफ्रीका में भारत के उच्चायुक्त श्री वीरेन्द्र गुप्ता ने स्वागत भाषण में कहा कि भारत ने एक बैरिस्टर दक्षिण अफ्रीका भेजा था, हमने उसे महात्मा बना कर भेजा. उन्होंने हिंदी को युवाओं से और प्रौद्योगिकी से जोड़ने का आह्वान किया.

प्रख्यात कथाकार और महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के कुलपति विभूति नारायण राय ने इस सच्चाई को उजागर किया कि सरकार की फाइलों पर चलने वाली भाषा कभी जनसाधारण की भाषा नहीं बन पाती. राय ने यह बात सम्मेलन स्थल के शांति कक्ष में आयोजित 'महात्मा गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान का संदर्भ' विषयक परिसंवाद सत्र में अध्यक्षीय टिप्पणी के दौरान कही. उन्होंने कहा कि भाषा से ही राजा का जनता के साथ रिश्ता कायम होता है. जब हम गांधीजी की भाषा दृष्टि पर सोचते हैं तो हमें दूसरी भाषाएं सीखने के लिए उदार होना होगा. आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा कि गांधी का चिंतन परम्परागत होते हुए भी क्रांतिकारी चिंतन है. गांधीजी की मुख्य चिंता थी कि अंग्रेजी कहीं देश की राष्ट्रभाषा न बन जाए. गांधीजी मानते थे कि हिन्दी कई बोलियों की संगम है और भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली भाषा है. वरिष्ठ पत्रकार मधुकर उपाध्याय ने अपनी बात की शुरुआत महात्मा गांधी द्वारा भरूच में हिन्दी भाषा को लेकर उठाए गए पांच सवालों से की. उपाध्याय ने हिन्दी समाज की खामियों को रेखांकित करते हुए कहा, हमने अपनी बोलियों और उर्दू से एक तरह से कन्नी काट ली है. वहीं, प्रख्यात आलोचक विजय बहादुर सिंह ने कहा कि गांधीजी आज की पीढ़ी के लिए बीते दिनों की चीज हैं, जबकि आज भी हम विचार के लिए गांधी के पास जाते हैं. गांधी की चेतना की डोर समाज से जुड़ी हुई थी. गांधी इस देश की आत्मा के पर्याय थे. गांधी सत्ता की राजनीति में भरोसा नहीं करते थे.

पूर्व सांसद और प्रसिद्ध कवि बालकवि बैरागी ने अनुवाद की समस्याओं पर उदाहरण सहित प्रकाश डालते हुए कहा कि इस तरह के कार्यों के लिए एक पूर्णकालिक विश्वविद्यालय की आवश्यकता है. हिंदी के प्रसिद्ध जानकार अश्विनी कुमार सिंह ने कहा कि अनुवादक में अनुवाद की गहरी समझ होना जरूरी है, तभी स्रोत भाषा में विद्यमान बारीकियों को वह आसानी से लक्ष्य भाषा में परिवर्तित कर सकता है.

सम्मेलन में यहां पहुंचे भारतीय विद्वानों का मानना है कि हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अनुवाद बहुत जरूरी है. वैसे इन विद्वानों ने यह भी स्वीकार किया कि अनुवाद की बहुत सारी समस्याएं हैं और इन समस्याओं पर गौर किया जाना भी आवश्यक है.

गांधीग्राम के ज्ञान कक्ष में 'हिंदी के प्रसार में अनुवाद की भूमिका' विषय पर देश-विदेश से आए प्रतिभागियों ने कुल १४ आलेख पढ़े. सत्र की अध्यक्षता जापान की तोमोको किकुजी ने की. किकुजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अनुवाद के क्षेत्र में हो रहे कार्यों पर संतोष व्यक्त किया और इसकी सराहना भी की.

सत्र के दौरान 'मशीनी अनुवाद की उपादेयता' विषय पर एक आलेख प्रस्तुत किया गया. इसे प्रस्तुत करते हुए ओम प्रकाश प्रजापति ने मशीनी अनुवाद की सीमाओं और संभावनाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला. 'भारतीय साहित्य की अवधारणा में अनुवाद की भूमिका' विषय पर परिचर्चा करते हुए डॉ. अन्नपूर्ण सी ने अनुवाद की वैश्विक भूमिका पर चर्चा की.

सम्मेलन में प्रोफेसर एस शेषारत्नम, बालकवि बैरागी तथा मधुकर उपाध्याय समेत कुल १८ विद्वानों को हिंदी की सेवा के लिए सम्मान प्रदान किया गया. यह सम्मान पाने वाले अन्य भारतीय विद्वानों में हिमांशु जोशी, राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, कैलाश चंद्र पंत, एम पियोंग तेजमन जमीर, प्रोफेसर सी ई जीनी, डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', प्रोफेसर जाबिर हुसैन, प्रोफेसर मधुसूदन त्रिपाठी, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रोफेसर बी वाई ललिताम्बा, सुश्री उषा गांगुली, डॉ. के वंजा, डॉ. गिरिजा शंकर त्रिवेदी, हरिवंश और प्रोफेसर वाई लक्ष्मीप्रसाद शामिल हैं.

इसके साथ ही दुनिया के विभिन्न देशों में हिंदी भाषा की अलख जगाने वाले ३० हिंदी विद्वानों को भी उनके योगदान के लिए सम्मान प्रदान किया गया. इनके नाम इस प्रकार हैं - आस्ट्रेलिया के डॉ. पीटर गेराल्ड फ्रेडलान्डर, रूस के प्रोफेसर सेर्गेई सेरेबिरयानी, चेक गणराज्य के डॉ. डगमार मार्कोवा, इटली के मार्को जोली, चीन के प्रोफेसर ल्यू अन्वूक, मारीशस की डॉ. श्रीमती बूधू, थाइलैंड के बमरूंग खाम, श्रीलंका के प्रोफेसर उपुल रंजीत हेवाताना गामेज, बुल्गारिया की सुश्री वान्या जार्जिवा गंचेवा, अफगानिस्तान के जबुल्लाह 'फीकरी', सूरीनाम के भोलानाथ नारायण, उक्रेन की सुश्री कैटरीना बालेरीवा दोवबन्या, ब्रिटेन के डॉ. कृष्ण कुमार, जर्मनी के इंदुप्रकाश पांडेय, जर्मनी की ही डॉ. बारबरा लाइर्स, मारीशस के सत्यदेव टेंगर, जापान के प्रोफेसर टिकेदी इशिदा और डॉ. तोरमाचो किकुची, ब्रिटेन के विजय राणा तथा अमेरिका के वेदप्रकाश बटुक. ■

'मृत्योर्मामृतम गमय' का विमोचन

सिन्सिनाटी ओहायो के जैन मन्दिर में विगत ८ सितम्बर २०१२ की सुहानी संध्या को श्रीमती रेणु राजवंशी गुप्ता की पुस्तक 'मृत्योर्मामृतम गमय' का विमोचन गुरूदेव श्री तारानन्दजी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ. संचालक थे श्री राज मांगलिक जी. कार्यक्रम का प्रारम्भ श्रीमती अरुणिमा सिन्हा की ईश स्तुति गायन से हुआ, तत्पश्चात लेखिका ने अपने पुस्तक संबंधी विचारों पर प्रकाश डाला. इस अवसर पर श्रीमती मुदिता गोविल ने भी अपने उद्‌गार व्यक्त किये. श्रीमती शोभा पटेल जो इस पुस्तक की सह-लेखिका भी हैं, ने अपने विचारों की कड़ी जोड़ कर एक सशक्त श्रृंखला तैयार करा दी और इनकी तृतीय सह-लेखिका श्रीमती शोभा पटेल, भारत ने मिल कर इस श्रृंखला को सुदृढ़ बनाते हुए मूल विचारों को पुस्तकाकार रूप प्रदान करने में अपना अतुल योगदान दिया. इस पुस्तक का मूल मंतव्य कैन्सर जैसे दु:साध्य रोग से पीड़ित एक लड़की की जीवन यात्रा को, स्थूल जीवन धरातल से लेकर, दवाइयों, कठिनाइयों को झेलती हुई, उसकी सूक्ष्म आध्यात्मिक यात्रा में पर्यावसान कराना है. साथ ही इस रोग से पीड़ित स्वामी रामकृष्ण परमहंस, महान पुरुष बाबा आम्टे, महर्षि रमण एवं गुरु गोलवलकर जी जैसे महान पुरुषों के विचार व्यक्त कर रोग की दु:सहता को यह कह कर नकारा है कि रोग केवल इस स्थूल शरीर का है, आत्मा को यह छू भी नहीं सकता. तत्पश्चात

"पुस्तक का मूल मंतव्य कैन्सर जैसे दु:साध्य रोग से पीड़ित एक लड़की की जीवन यात्रा को, स्थूल जीवन धरातल से लेकर, दवाइयों, कठिनाइयों को झेलती हुई, उसकी सूक्ष्म आध्यात्मिक यात्रा में पर्यावसान कराना है."

पुस्तक विमोचन करते हुए यथावसर भारत से आये हुए गुरुदेव ने लेखिका के सामाजिक कार्यकर्ता होने के साथ-साथ उनके आध्यात्मिक पक्ष की सूक्ष्मता को उजागर करते हुए उन्हें अपना आशीर्वाद दिया.

जलपान के बाद लगभग ९ बजे उपस्थित माननीयजनों के मनोरंजनार्थ कवि सम्मेलन प्रारंभ हुआ. संचालक थे श्री विपिन जिन्दल, जिन्होंने कवि मन्तव्यों को भांपते हुए बीच-बीच में अपने चुटकुलों एवं हास्य व्यंग्य की फुलझड़ियों से श्रोताओं को आनन्दित किया. डेटरोयट से आये कवि श्री सतीश व्यास, श्री दिनेश बिल्लौर एवं श्री राजन, कोलम्बिया से आई हुई श्रीमती अरुणिमा सिन्हा, क्लीवलैन्ड से आये श्री रमेश जोशी जी जो हिन्दी विश्वा के नये संपादक हैं एवं स्थानीय कवि श्रीमती नसीम, श्रीमति लावण्या शाह, श्री केदार वर्मा तथा श्रीमती रेणु राजवंशी गुप्ता जी ने अपना काव्य पाठ कर इस सुहानी संध्या को और भी रंगीन बना दिया. इस कार्यक्रम में मुख्य रूप से निमंत्रित श्री माइक जो ए.टी.आर.आई.यू.एम. कैंसर हास्पिटल के अधिकारी हैं, को ससम्मान पुस्तक में आई धन राशि भेंट की गई.■

प्रस्तुति : डॉ. सरोज अग्रवाल, डेटन ओहायो

स्मृति-शेष

विगत दिनों दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के सम्मेलन कक्ष में 'विश्वंभरा', 'साहित्य मंथन' और 'हिंदी भारत' के संयुक्त तत्वावधान में हैदराबाद के वरिष्ठ कलमकार चंद्रमौलेश्वर प्रसाद की स्मृति में श्रृद्धांजलि-सभा आयोजित की गई. उल्लेखनीय है कि 'कलम' नामक ब्लॉग के लेखक, साहित्य समीक्षक, कवि और अनुवादक चंद्रमौलेश्वर प्रसाद का विगत दिनों निधन हो गया था. इस अवसर पर उन्हें श्रृद्धांजलि देते हुए प्रो. एम. वेंकटेश्वर ने कहा कि चंद्रमौलेश्वर प्रसाद परम आत्मीय मित्र, स्नेही परिजन और मानवतावादी संत के समान थे जिनका सामाजिक और साहित्यिक योगदान चिरकालिक है. श्री प्रसाद गर्भनाल परिवार से पुस्तक-समीक्षक के तौर पर लम्बे समय तक जुड़े रहे.■

मुझे कई मित्रों ने गर्भनाल के बारे में बताया था किन्तु अब पढ़ पाया हूँ. सच पूछें तो अब तक न पढ़ने का पछतावा हो रहा है. वास्तव में यह बहुत सुन्दर और अच्छी पत्रिका है, जबकि अधिकतर सुन्दर चीज़ों का अच्छा होना संदिग्ध होता है. साफ़-सुथरे लोगों को आप पत्रिका से जोड़ पाए हैं यह बड़ी बात है. एक बात और कहना चाहूँगा, अन्यथा न लें - यदि हो सके तो छपाई में 'ँ' का ध्यान रखें. अभी तक 'ँ' के स्थान पर 'ं' को पचा नहीं पाया हूँ.

रमेश जोशी, क्लीवलैन्ड
सम्पादक, विश्वा

गर्भनाल के सितम्बर-२०१२ अंक में विविधता है. अलग-अलग क्षेत्र के अलग-अलग व्यक्तियों की प्रभावशाली रचनाओं का संकलन है.

डॉ. हरिजोशी का व्यंग्य पढ़ कर मजा आ गया. बीना पॉल की कहानी और शकुंतला बहादुर की कविता बहुत पसंद आई. व्रजेन्द्र श्रीवास्तव जी के चिंतन में एक अच्छा उद्देश्यपूर्ण मार्गदर्शन भी है. ताराशंकर बंदोपाध्याय जी द्वारा लिखित और गंगानन्द झा द्वारा अनुवादित रचना ने मन में एक अजीब-सी हलचल पैदा कर दी.

आशा मोर, त्रिनिदाद

गर्भनाल का सितम्बर-२०१२ अंक प्राप्त हुआ. इस अनूठी पत्रिका को मैं लम्बे समय से पढ़ता आ रहा हूं. पूरी तरह से हिन्दी के लिये समर्पित आपका यह प्रयास आकर्षित करता है. लगातार हमें लाभान्वित करने के लिये आभारी हूं.

देवेश सोनी

गर्भनाल के ७०वें अंक में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेद का आलेख मेरे मन की बात आज भी पठनीयता के स्तर पर महत्व का लगता है.

ओमप्रकाश कादयान का आवरण चित्र बेहतरीन लगा.

सुशील, हिसार, हरियाणा

'शायरी की बात' कॉलम का नियमित पाठक हूं. मुझे ग़ज़लों और शायरी से बहुत लगाव है. गोस्वामी जी जिस तरह केवल एक पृष्ठ में पूरी पुस्तक का भाव व्यक्त कर देते हैं, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं. आपने अभी तक जिन-जिन पुस्तकों का विश्लेषण किया है मैं वह सभी पुस्तकें पढ़ना चाहता हूं.

मैं गत वर्ष अक्टूबर से गर्भनाल के हर अंक में नीरज गोस्वामी द्वारा लिखी जाने वाली 'शायरी की बात' कॉलम का नियमित पाठक हूं. मुझे ग़ज़लों और शायरी से बहुत लगाव है. गोस्वामी जी जिस तरह केवल एक पृष्ठ में पूरी पुस्तक का भाव व्यक्त कर देते हैं, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं. आपने अभी तक जिन-जिन पुस्तकों का विश्लेषण किया है मैं वह सभी पुस्तकें पढ़ना चाहता हूं. मैं एक छोटे शहर में रहता हूं और इन किताबों को एक साथ हासिल करना कठिन काम है ये भी जानता हूं.

शुभम मिश्रा, नागदा, उज्जैन

गर्भनाल के सितंबर अंक में गंगानन्द झा द्वारा लिखित सम्पादकीय पढ़ा. उन्होंने राजनीतिक दल के संरचना व कार्य प्रणाली के विषय में अति सारगर्भित व रोचक विश्लेषण किया है. इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं. सम्पादकीय में गांधीजी के विषय में जो दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया वह अत्यंत प्रशंसनीय है.

उम्मीद है आपके सम्पादकीय यूं ही हमारा ज्ञानवर्धन करते रहेंगे.

राजीव झा

मैं पिछले चार-पांच वर्षों से गर्भनाल पत्रिका 'ई-पत्रिका' के रूप में प्राप्त कर रहा हूँ. यह एक अच्छी मानक पत्रिका है जो कई वर्षों से हिंदी के प्रति अपनी आस्था का प्रतिनिधित्व करती है.

अन्य अंकों की भांति ही सितम्बर २०१२ का यह अंक भी अच्छी साहित्यिक सामग्री से भरपूर है. गंगानंद झा का लेख आज की राजनीति और देश के वातावरण की अच्छी व्याख्या करता प्रतीत होता है. आचार्य हजारी प्रसाद ने हलके चुटीले व्यंग्य के साथ इस लेख को लिख कर काफी रोचक बना दिया है. शेष लेख, कहानियां, और कवितायें भी अच्छी लगीं. यदि 'गर्भनाल' के आगे आने वाले अंकों में कुछ लघु-कथाओं, विनोदपूर्ण सामग्री को भी प्रकाशित करें तो यह पत्रिका और अधिक रोचक हो सकती है.

पंकज कुमार अग्रवाल, बिजनौर

अनिल वर्तक द्वारा प्रतिप्रेषित गर्भनाल पत्रिका देखी. बहुत ही अच्छी पत्रिका है.

श्रीधर पराड़कर, नई दिल्ली

गर्भनाल पत्रिका नियमित भेजने के लिए शुक्रिया. मुझे पसन्द है आपकी पत्रिका. खास बात है इसमें मेरे मनपसन्द शिक्षा विषय पर आलेख जरूर होता है.

बीनू भटनागर द्वारा लिखित 'सीखना कुछ मुश्किलें' बहुत अध्ययन कर लिखा गया है. लेखिका द्वारा – हाँ बच्चों का कई बार सीखना मुश्किल होता है जिसे हमने बीमारियों का नाम दे दिया - कभी सही न पढ़ पाना, कभी सही उच्चारण न कर पाना, कभी दो अक्षरों में भेद न कर पाना, इन सबके पीछे कारण एक है कि अभ्यास, समय पर सही तरीके से न हो पाना. बच्चा जिम्मेदारी है परिवार व स्कूल दोनों की. हम सभी जानते हैं शिक्षक व बच्चों का जो आदर्श अनुपात स्कूल में होना चाहिए वह है ही नहीं. एक शिक्षक ६० बच्चे एक साथ सम्भाल रहा है तो पर्याप्त अभ्यास प्रत्येक बच्चे से करवा पाना कठिन है. अतः घर पर अभिभावक द्वारा पर्याप्त अभ्यास कराना जरूरी होता है, जहाँ पर्याप्त अभ्यास हो रहा है वहाँ ये समस्या है ही नहीं, इसमें बच्चे का दोष नहीं होता है.

अपनी बात में टीम अन्ना की चर्चा की गई है इस अंक में. उद्देश्य बहुत सही था टीम का, टीम के सभी सदस्य एक विशेष कार्यक्षेत्र से हैं. कमी मुझे एक ही लगी कि आम जनता को उठाने का जो तरीका था वो गलत साबित हो गया. भीड़ में कौन किस उद्देश्य से आपके साथ है आप जान नहीं पाते और वो अपना उद्देश्य सफल कर चला जाता है. बहुत से भ्रष्टाचारी इस भीड़ में शामिल हो गये ये कहकर कि हम भारत भूमि के ईमानदार व्यक्ति हैं, जबकि वो निरन्तर भ्रष्टाचार कर रहे थे. लोगों तक जानकारियाँ पहुँचानी जरूरी है कि किस प्रकार उन्हें बिना पैसा दिए अपना काम करवाना है लोक सेवकों से. उनमें पढ़ने की आदत विकसित करनी होगी.

मधु अरोड़ा जी द्वारा धीरेन्द्र अस्थाना जी का लिया गया साक्षात्कार मुझे बहुत पसन्द आया कि लिव-इन-रिलेशिप हो या विवाहेत्तर सम्बन्ध या पत्नी के सहयोग की बात हो या पुरस्कारों की बात लेखक के जवाब सही दिये गये हैं. दिल को छूते हैं.

नीना पाल द्वारा लिखित कहानी 'दोहरा बन्धन' बहुत अच्छी और वास्तविकता को छूती कहानी है. आप कह सकते हैं कि हर घर की कहानी है दोहरा बन्धन. हम पैसे भी कमाना चाहते हैं और पुराने मूल्यों को भी बनाये रखना चाहते हैं. हम भूल जाते हैं कि बच्चे की अपनी स्वतन्त्रता का बहुत महत्व होता है. उसे अपनी उड़ान उड़ने देना चाहिए.

एक गलती शायद सभी करते हैं ये कहकर मेरा बच्चा, मेरा बच्चा, जबकि मैं मानती हूँ कि बच्चे की परवरिश देश का बच्चा सोचकर की जानी चाहिए. बहुत से लोग अपने बच्चों की इच्छा के बावजूद सेना में नहीं भेजना चाहते कि मेरा बच्चा ही मरने के लिए क्यों जाए. यदि सोच होती कि देश का बच्चा है तो शायद हमें अपने बच्चों को सेना में भेजने से डर नहीं लगता. बहुत से बड़े इसलिए भ्रष्टाचार करते है कि मैं अपने बच्चे को भूखा नहीं रख सकता जबकि भावना होनी चाहिए कि ये देश का बच्चा है आज भूखा रह भी जायेगा तो कल बेहतर भारत भविष्य में इसके लिए बेहतर सम्भावनाएँ होगी. सोच बदलनी बहुत जरूरी है.

बबिता वाधवानी, जयपुर

Recieved your mag,70. It is a nise and good sanklan of hindi sahitya for me. I always wait for this mag. Thanks Sir.

Devendra Saxena

अनुरोध

पाठकों एवं रचनाकारों से अनुरोध है कि प्रतिक्रियायें एवं रचनाएँ यूनिकोड में भेजें, हमें सुविधा होगी. रचनाओं के साथ संक्षिप्त परिचय एवं फोटो भी भेजें. अंक के बारे में अपनी प्रतिक्रिया निम्नलिखित ईमेल पते पर भेजें :

garbhanal@ymail.com